1964-2014
पचास वर्ष
50

अंगारे

सज्जाद ज़हीर
अहमद अली
रशीद जहाँ और
महमूद ज़फर
की रचनाओं का संग्रह

चयन एवं सम्पादन

शकील सिद्दीकी

आज भी सुलग रहे हैं छह दशक पुराने अंगारे

उर्दू के अत्यंत चर्चित तथा विवादास्पद कहानी-संग्रह 'अंगारे' का हिंदी में अनुवाद करके मुझे आत्मिक सुख प्राप्त हुआ है, जैसे किसी पुराने कर्ज को चुकाने का अवसर मिल गया हो। उन विचारों और विश्वासों से मैं बँधा रहा हूँ, 'अंगारे' कह कहानियाँ उनका प्रखर प्रतिनिधित्व करती हैं! 'अंगारे' नवंबर 1932 में छपी तथा ब्रिटिश शासन द्वारा मार्च 1933 में जब्त हो गई।

मुझे यह सोच कर अक्सर दुःख होता है कि भारत के प्रगतिशील जनवादी साहित्यिक आंदोलन ने ऐतिहासिक महत्व के इस जरूरी संग्रह की ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया! न तो उर्दू में इसके पुनर्प्रकाशन और न ही दूसरी भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद की कोशिश हुई, जब कि प्रगतिशील जनवादी आंदोलन की पूर्वपीठिका तैयार करने में इस संग्रह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे जुड़े कहानीकारों ने वामपंथी तथा प्रगतिशील आंदोलन के विकास और विस्तार में अप्रतिम योगदान दिया!

इसे संयोग मानिए या प्रगतिशील आंदोलन की विडंबना कि मार्च 1933 में प्रतिबंधित होने के बाद भारत में इसका प्रथम प्रकाशन हिंदी में हो रहा है! मेरे अनुवाद (दिसंबर 1990) के उपरांत लंदन में इसके पुनर्प्रकाशन की सूचना अवश्य मिली! यह साहसपूर्ण कार्य पाकिस्तान की एक लेखिका शबाना महमूद (लंदन) के प्रयासों से संभव हो पाया! इस संस्करण का विशिष्ट पक्ष वह परिशिष्ट है, जिसमें इस संग्रह के छपने के बाद उठ खड़े हुए तीव्र विवाद तथा ब्रिटिश शासन द्वारा इसे जब्त करने संबंधी कार्यवाही के मुतआलिक सामग्री संकलित की गई है! यह समस्त सामग्री ब्रिटिश इंडिया लाइब्रेरी से ली गई है। हिंदी संस्करण के साथ भी यह समूची सामग्री जरूरी इजाफों के साथ शामिल की जा रही है! इस प्रकार 1987 में लंदन से छपे उर्दू संस्करण की अपेक्षा प्रस्तुत हिंदी संस्करण अधिक महत्वपूर्ण हो गया है! इससे पाठक चौथे दशक के आरंभिक वर्षों में इस संग्रह द्वारा एक ठहरे हुए समाज में मचाई गई हलचल का अनुमान लगा सकेंगे!

'अंगारे' या अंगारे जैसे किसी संग्रह की कल्पना का आधारस्थल लंदन था या लखनऊ, यह कह पाना कठिन है परंतु यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रगतिशील लेखक संघ के समान ही लंदन 'अंगारे' की कल्पना की भी जन्मभूमि है! रोचक संयोग यह कि 'अंगारे' की कल्पना जिस समय लखनऊ में मूर्त रूप में थे, वह वहाँ विधि की उच्च शिक्षा प्राप्त करने गए हुए थे! तो क्या लंदन में बैठे-बैठे उन्होंने 'अंगारे' का संपादन और प्रकाशन संभव बना दिया? निश्चित रूप से नहीं! वह सन् 32 की भीषण गर्मियों के दिन थे जब सज्जाद जहीर जिन्हें लोग प्यार से बन्ने भाई कहते थे, और जो उच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश सर वजीरहसन के सुपुत्र थे, लंबी छुट्टी पर लखनऊ आए! 'अंगारे' के दूसरे प्रमुख कहानीकार अहमद अली, उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग से संबद्ध थे। वह भी आक्सफोर्ड के छात्र रह चुके थे, बन्ने भाई और उन्होंने लगभग एक ही साथ कहानियाँ लिखना शुरू की थीं! साहित्य को ले कर दोनों के विचारों में भी काफी समानता थी! योरोपीय भाषाओं के साहित्य का दोनों पर ही गहरा प्रभाव था। दोनों ही उर्दू कहानी के प्रचलित स्वरूप तथा समाजी सरतेहाल से बहुत गहरे तक असंतुष्ट थे। साहित्य के सामर्थ्य को वे अच्छी तरह समझ रहे थे, भारतीय समाज को किस तरह के साहित्य की

जरूरत है, इसे ले कर उनके मन में कोई द्वंद नहीं था! मुस्लिम समाज को ले कर उनकी चिंता अधिक सघन थी! खास कर स्त्री की त्रासदपूर्ण हालत को ले कर! इसलिए व खास अंदाज व तेवर की कहानियों का एक संकलन प्रकाशित करवाना चाहते थे! परंतु संकलन हेतु निर्धारित पृष्ठों भर कहानियाँ उनके पास नहीं थीं! सज्जाद जहीर ने आक्सफोर्ड के ही एक पूर्व छात्र तथा कम्युनिस्ट कार्यकर्ता महमूद जफर की एक कहानी (जवामंर्दी) का अंग्रेजी से उर्दू में अनुवाद किया, कहानी 'अंगारे' के प्रस्तावित सोच के एकदम अनुरूप थी! सामग्री अब भी कम थी।

उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा को आंदोलन की गति देने वाले, अलीगढ़ वीमेन्स कॉलेज के संस्थापक दो महिला पत्रिकाओं के संपादक शेख अब्बुल्लाह (अलीगढ़) की सुपुत्री रशीद जहां उन दिनों दिल्ली के लेडीहार्डिंग कालेज से डॉक्टरी की शिक्षा पूरी करने के बाद लखनऊ (कैसरबाग) में प्रेक्टिस कर रही थीं, अपने धारदार व्यक्तित्व तथा साहित्यिक रजहान के कारण वह बहुत जल्दी लखनऊ के बौद्धिक व सुरुचिपूर्ण संपन्न वर्ग में लोकप्रिय हो गयीं! उनसे सम्पर्क किया गया और उनकी एक कहानी 'दिल्ली की सैर' तथा उनका बहुचर्चित एकांकी 'पर्दे के पीछे' संकलन में शामिल किया गया! उनकी कहानी अपेक्षाकृत कमजोर है, पर एकांकी न सिर्फ अंगारे की केंद्रीय सोच बल्कि स्वयं रशीद जहां की समझ और दृष्टि तथा तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य को ले कर उनके मन में पैठी गहरी बेचैनी का समर्थ प्रतिनिधित्व करता है! रशीद जहां स्त्री मुक्ति की मुखर प्रवक्ता थीं! उनकी इस वैचारिक पृष्ठभूमि का संकेत उनकी पहली कहानी 'कलमा' से भी मिलता है जो आई. टी. कॉलेज (लखनऊ) की वार्षिक पत्रिका में छपी थी!

इस प्रकार नौ कहानियों तथा एक एकांकी का संकलन नवंबर 1932 में लखनऊ के विक्टोरिया स्ट्रीट स्थित निजामी प्रेस से प्रकाशित हुआ, मूल्य रखा गया चार आना तथा प्रतियाँ छपीं एक हजार।

'अंगारे' क्या छपी तूफान उठ खड़ा हुआ। 'अंगारे' की कहानियाँ जिन-जिन लोगों की सत्ता और स्वार्थ पर चोट कर रही थीं, जिन चेहरों पर से नकाब हटा रही थीं, वे सक्रिय हो उठे! संकलन पर आरोप लगाया गया कि यह इस्लाम और मुसलमानों के खिलाफ यूरोपीय (अंग्रेजी) शिक्षा के नशे में चूर चंद सरफिरे नास्तिक नौजवनों की सुनियोजित साजिश है! वे इस्लाम और इस्लाम की शिक्षा देने वालों को बदनाम करना चाहते हैं, इससे मुसलमानों की भावनाएँ आहत हुई हैं, तथा इस संकलन की कहानियाँ और एकांकी नौजवानों के चरित्र पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं!

सरफराज (लखनऊ) तथा मदीना (बिजनौर) ने 'अंगारे विरोधी अभियान' को हवा देने में खास भूमिका अदा की। धर्म के नाम पर भोली जनता, विशेषरूप से स्त्री देह का शोषण करने वाली तथा स्थितिवादियों को अच्छा अवसर हाथ आ गया था।

''देख लो अंग्रेजी भाषा का कमाल, खुदा और रसूल को भी नहीं बख्शा जा रहा है।''

''और यह औरतों की पढ़ाई, रशीद जहां बनाना लड़कियों को स्कूल भेज कर।''

आज जो कुछ ढाका में घटित हो रहा है। तस्लीमा नसरीन को ले कर, साठ साल पहले लखनऊ में वो सब घटा था। थोड़ा छोटे पैमाने पर।

शासन से 'अंगारे' के प्रसार और विक्रय पर प्रतिबंध लगाने तथा इसके कहानीकारों को दंडित करने की माँग की गई। इस संबंध में शिया कॉफ्रेंस ने एक प्रस्ताव भी पारित किया। (फरवरी 1933)

अंगारे विरोधी अभियान का प्रमुख निशाना बनी डॉ. रशीद जहां। धार्मिक मान्यताओं की आड़ में स्त्री देह के शोषण और उसे जिंदगी के अवदानों से वंचित रखने के विरूद्‌ध एक मुसलमान स्त्री के विद्रोह को धर्म का निहित स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करने वाले लोग स्वीकार नहीं कर पा रहे थे! रशीद जहां को 'नाक काट लेने' तथा 'चेहरा बिगाड़ देने' की धमकियाँ दी गयीं, उनका तो नाम ही पड़ गया था, 'अंगारे वाली रशीद जहां'।

विरोध की उग्रता का कुछ अनुमान 'जमाना' मई 1933 में प्रकाशित मुंशी दया नारायण निगम की उस टिप्पणी से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने इस मुहिम को 'तुफाने अजीम' की संज्ञा दी! अहमद अली के अनुसार विरोध इतना उग्र था कि कुछ अर्सा तक कान पड़ी आवाज तक सुनाई न देती थी।

'अंगारे' के कहानीकारों की सहयात्री तथा उस सारे मंजर की चश्मदीद गवाह, 'हाजरा बेगम' (जोहरा सहगल की बड़ी बहन) का बयान है कि, ''अंगारे शाया करते वक्त खुद सज्जाद जहीर को अन्दाजा नहीं था कि यह एक नई अदबी राह का संगेमील (मीलस्तंभ) बन जाएगा। वह खुद तो लंदन चले गए लेकिन यहाँ तहलका मच गया, पढ़ने वालों की मुखालिफत इस कद्र बढ़ी कि मस्जिदों में 'रशीद जहां अंगारे वाली' के खिलाफ वायफ (धार्मिक उपदेश) होने लगे, फतवे दिए जाने लगे और अंगारे जब्त हो गई।''

शबना महमूद (लंदन) के अनुसार।

''संयुक्त प्रांत की एसेंबली में इस किताब को ले कर सवाल उठाए गए, इस किताब के लेखकों की निंदा में पर्चे बाँटे गए तथा कानूनी कार्यवाही करके लेखकों को सजा दिलाने हेतु मुकदमों के लिए फंड जमा किए गए।''

आखिरकार यू. पी. गवर्नर कौंसिल में इस विषय पर बहस की गई और 15 मार्च 1933 को आई.पी.सी. की धारा 295 ए के अंतर्गत पुस्तक 'अंगारे' को जब्त करने के आदेश दे दिए गए। फलस्वरूप सरकारी रेकार्ड के लिए 5 प्रतियाँ छोड़ कर शेष सभी उपलब्ध प्रतियों को जलाने की व्यवस्था की गई!

किताब की जब्ती की बाजाब्ता ऐलान 25 मार्च 1933 के सरकारी गजट में किया गया।

अंगारे के लेखकों को सामाजिक बहिष्कार की स्थिति का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि लेखक – बिरादरी में भी इन कहानीकारों के पक्ष में खड़े होने वालों की संख्या नहीं के बराबर थी। बाबा ए उर्दू मौलवी अब्दुल हक ने अवश्य इस संकलन का स्वागत किया! मुंशी प्रेमचंद, हसरत मोहनी तथा नेयाज फतेहपुरी की इस संबंध में कोई टिप्पणी नहीं मिलती। जब कि ये सभी मानवीय मूल्यों व आधुनिकता के पक्ष में धर्मान्धता, रूढ़िवाद और हर तरह के शोषण के खिलाफ अपने-अपने स्तर पर लगातार सक्रिय थे!

दरअसल अंगारे विरोधी मुहिम की मार मात्र चार कहानीकारों तक सीमित नहीं थी, पर अभिव्यक्ति की आजादी, तकलीफ के बयान की स्वतंत्रता तथ इंसानी जिंदगी को बेहतर बनाने की कोशिशों पर शहीद हमला था! अत: प्रमुख सवाल यह था कि 'अंगारे' के कहानीकार इस हमले के आगे अपने सर खम करते हैं या अपने लिखे शब्दों और वक्त विचारों के पक्ष में खड़े होते हैं तो मजबूरी में कँपकपाते हुए या अपेक्षित समूची दृढ़ता के साथ?

इतिहास के अत्यंत नाजुक मोड़ पर अंगारे के कहानीकारों ने सही फैसला किया। उन्होंने 15 अप्रैल 1933 को दिल्ली से एक प्रेस बयान जारी करके इस संकलन की कहानियों के लिए किसी प्रकार की क्षमा

याचना की संभावना से साफ इंकार किया तथा इस तरह के लेखन को निर्बाधगति से जारी रखने की घोषणा की! निश्चय ही भारतीय साहित्य के इतिहास का यह अत्यंत महत्वपूर्ण बयान था, जिसे महमूदुज्जफर ने लिखा और जो 'लीडर' दैनिक (इलाहाबाद) में अंगारे के पक्ष में शीर्षक से प्रकाशित हुआ। बयान में कहा गया था।

"अब से पाँच महीने पहले चार नौजवान कलमकारों ने जिनमें एक खातून भी शामिल हैं, उर्दू में अंगारे के शीर्षक से मुख्तसर कहानियों का एक संकलन प्रकाशित किया था।"

किताब का संक्षिप्त विवरण, उसके विषय, उसकी वजह से बरपा होने वाले हंगामों का जिक्र करने के बाद इस बयान में कहा गया था।

"इस किताब के लेखक इस संबंध में किसी प्रकार की क्षमा याचना के इच्छुक नहीं हैं, वो इसे वक्त के सुपुर्द करते हैं वो किताब के प्रकाशन के परिणामों से बिलकुल भयभीत नहीं हैं और इसके प्रसार एवं इसी तरह की दूसरी कोशिशों के प्रसार के अधिकार का समर्थन करते हैं, वो मूल रूप में समूची मानवता और विशेष रूप से भारतीय अवाम के लिए महत्वपूर्ण उद्देश्यों के सिलसिले में आलोचना की आजादी तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का खुला समर्थन करते हैं। इस क्रम में 'अंगारे' के लेखकों ने इस्लाम का इंतखाब इसलिए नहीं किया कि उन्हें इस्माल से कोई खास चिढ़ है बल्कि इसलिए कि वो खुद इस्लामी समाज में जन्में हैं और अपने आपको इस समाज के बारे में चर्चा करने का ज्यादा अहल समझते हैं! यहाँ उन्हें बुनियादी मूल्यों का ज्यादा अंदाजा था। किताब का या उसके लेखकों का जो भी हस्त्र हो हमें यकीन है कि दूसरे लिखने वाले हिम्मत न हारेंगे। हमारा व्यावहारिक प्रस्ताव यह है कि फौरी तौर पर 'प्रोग्रेसिव राईटर्स लीग' का गठन किया जाए! जो समय-समय पर इस तरह की दूसरी रचनाएँ अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में प्रकाशित करें। हम उन तमाम लोगों से जो हमारी इस ख्याल से सहमत हो, अपील करते हैं कि वो हमसे राब्ता कायम करें और अहमद अली से खतो किताबत करें।"

ऐतिहासिक महत्व के इस बयान में दो तथ्य साफ उभर कर सामने आते हैं। पहला यह कि प्रचंड विरोध तथा भयानक निंदा के बावजूद 'अंगारे' के कहानीकार किंचित विचलित नहीं हुए, धारदार हथियारों जैसे खतरनाक क्षण उन्हें भयभीत नहीं कर सके। साथ ही मानवता के हिम में 'अंगारे' की परंपरा को आगे बढ़ाने हेतु वे दृढ़प्रतिज्ञ नजर आते हैं। यद्यपि लेखन के स्तर पर रशीद जहां के अलावा इस परंपरा को कोई और आगे नहीं बढ़ा सका! किसी हद तक अहमदअली ने भी अपनी बाद की कहानियों में 'अंगारे' की कहानियों जैसी धार पैदा करने की कोशिश की! सज्जाद जहीर और महमूदुज्जफर 'अंगारे' की पृष्ठभूमि में सक्रिय विचारधारा तथा उसकी प्रतिबद्धताओं से तो जीवन की अंतिम साँसो तक बँधे रहे पर लेखन के स्तर पर वे इस परंपरा को आगे नहीं बढ़ा सके! दोनों का समय कम्युनिस्ट पार्टी के कामों में ज्यादा गुजरने लगा! सज्जाद जहीर की तो और भी व्यस्तताएँ थीं।

दूसरा यह कि अंगारे के पक्ष में तथा इन जैसी रचनाओं के प्रचार-प्रसार हेतु 'प्रोग्रेसिव राइटर्स लीग' की स्थापना का प्रस्ताव ही वस्तुत: अप्रैल 1936 में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स-एसोसिएशन' के गठन का आधार बिन्दु बना। यह मात्र संयोग नहीं था कि इन कहानीकारों ने पी.डब्लू.ए. के गठन तथा उसके स्थापना सम्मेलन (9-10 अप्रैल 1936) के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सम्मेलन के सफल आयोजन के लिए रशीद जहाँ के आग्रह पर प्रेमचंद का सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकारने से इंकार न कर

पाना प्रगतिशील आंदोलन के इतिहास की अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। यहाँ तक कि रशीद जहाँ और महमूदुज्जफर (जो बाद में दांपत्य जीवन में बँध गए थे) अपना सब कुछ उन मूल्यों और विश्वासों के लिए समर्पित कर दिया, प्रगतिशील आंदोलन जिन्हें अपना बुनियादी लक्ष्य बना कर चला था! सज्जाद जहीर तो प्रगतिशील आंदोलन का प्रतीक ही बन गए थे।

इससे यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिए कि प्रगतिशील लेखक संघ के गठन तथा प्रगतिशील आंदोलन की शुरुआत की प्रेरणा का एकमात्र स्त्रोत 'अंगारे' ही था। तीसरे दशक के अंतिम वर्षों तक सघन हो आई नव जागरण की लहर, राष्ट्रवादी चेतना का विकास, जनांदोलन की तेज होती धार, 'स्व', के प्रति अभियान का विस्तार पाता बोध, विदेशी गुलामी तथा सामाजिक सड़ांध से मुक्ति पाने की छटपटाहट, मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार एवम् समाज के प्रति लेखक की जवाबदेही का बढ़ता एहसास, वो प्रमुख कारण थे जो भारत में प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे!

'अंगारे' ने अपने समय में तथा बाद के सालों में भी बहुत लोगों को आन्दोलित किया। उसने सआदत हसन मंटो, इस्मत चुगताई व हसन असकरी जैसे समर्थ रचनाकारों को साहित्य के लिए त्याज्य मान लिये गए पर जीवन के अनिवार्य विषयों पर कहानियाँ लिखने का साहस दिया, उर्दू में धार्मिक व सामाजिक रूढियों के खिलाफ प्रभाव निश्चय ही हिंदी कहानी पर भी पड़ा! स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित कहानियों को नया आयाम यहीं से मिलता है बल्कि सामाजिक यथार्थ के प्रतिपादन में परंपरा का निषेध भी 'अंगारे' से ही प्रारंभ होता है! 'कफन' जैसी कहानी इसी निषेधात्मक 'रवैये' की उत्पत्ति है!

इस दावे में काफी दम है, कि 'अंगारे, से कहानी की एक नई धारा का जन्म होता है! या यह कि 'अंगारे' नई कहानी का प्रस्थान बिंदु है!

अंगारे की कहानियाँ आज भी बेचैन करती हैं, धार्मिक उन्माद तथा सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध पाठकों को आंदोलित करने की सामर्थ्य अभी उनमें बाकी है। बुरे की निर्भीक आलोचना का साहस वो अब भी देती हैं!

अर्थात 'अंगारे' आज भी प्रासंगिक है!

मुझे आशा है कि इस संग्रह का हिंदी अनुवाद जिंदगी को सुंदर बनाने की मुहिम तथा धर्मनिर्पेक्ष जनाभिमान से जुड़े सामान्य पाठकों तथा रचनाकारों को संबल दे सकेगा! निश्चय ही इस संग्रह का पुस्तक रूप में प्रकाशन किसी समुदाय विशेष की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के लिए नहीं किया जा रहा है।

'अंगारे' के हिंदी अनुवाद तथा इसके साथ संलग्न सामग्री के लिए मैं युवा पत्रकार श्री कमाल एच. खान तथा वरिष्ठ कथाकार श्री रामलाल का आभारी हूँ। पुस्तक को प्रस्तुत रूप देने में डॉ. अशोक त्रिपाठी का परामर्श बहुत काम आया, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। मैं श्री शिवकुमार सहाय के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने 'अंगारे' जैसी विवादास्पद पुस्तक के हिंदी अनुवाद को 'परिमल प्रकाशन' से छापना स्वीकार किया

- शकील सिद्दीकी

नींद नहीं आती

- सज्जाद ज़हीर

घड़-घड़-घड़-घड़, टिख-टिख, चट, टिख-टिख-टिख, चट-चट-चट। गुजर गया है जमाना गले लगाए ए...ए... ए खामोशी और अँधेरा। अँधेरा-अँधेरा। आँख एक पल के बाद खुली। तकिया के गिलाफ की सफेदी। अँधेरा मगर बिल्कुल अँधेरा नहीं। फिर आँख बंद हो गई। मगर पूरा अँधेरा नहीं। आँख दबा कर बंद की, फिर भी रोशनी आ ही जाती है। अँधेरा पूरा अँधेरा क्यों नहीं होता? क्यों नहीं? क्यों नहीं?

बड़ा मेरा दोस्त बनता है, जब मुलाकात हुई, आइए अकबर भाई, आपको तो देखने को आखें तरस गईं। हें...हें...हें। कुछ ताजा कलाम सुनाइए। लीजिए सिगरेट का शौक फरमाइए। मगर समझता है, शेर खूब समझता है। वह दूसरा उल्लू का पट्ठा तो बिल्कुल मूढ़ है। आख्खाह - आज तो आप बिल्कुल नई अचकन पहने हैं। नई अचकन पहने हैं... तेरे बाप का क्या बिगड़ता है जो मैं नई अचकन पहने हूँ! तू चाहता है कि बस तेरे पास ही नई अचकन हो और शेर समझना तो दूर की बात, सही पढ़ भी नहीं सकता। नाक में दम कर देता है। बेहूदा - बदतमीज कहीं का। मगर बड़ा भारी दोस्त बनता है। ऐसों की दोस्ती क्या। मेरी बातों से उसका दिल बहल जाता है। बस यही दोस्ती है, मुफ्त का मुसाहिब मिला, चलो मजे हैं... खुदा सब कुछ करे गरीब न करे। दूसरों की खुशामद करते-करते जबान घिस जाती है और वह है कि चार पैसे जो जेब में हमसे ज्यादा हैं तो मिजाज ही नहीं मिलते। मैंने आखिर एक दिन कह दिया कि मैं नौकर हूँ, कोई आपका गुलाम नहीं हूँ। तो क्या आँखे निकाल कर लगा मुझे देखने। बस जी में आया कि कान पकड़ कर एक चाँटा रसीद करूँ, साले का दिमाग सही हो जाए।

टप-टप-खट, टप-टप-खट, टप-टप-खट, टप-टप-टप...ट

इस वक्त रात को आखिर यह कौन जा रहा है? मरन है उसकी और कहीं पानी बरसने लगे तो और मजा है। लखनऊ में जब मैं था। एक सभा में मूसलाधार बारिश। अमीनाबाद का पार्क तालाब मालूम होता था। मगर लोग हैं कि अपनी जगह से टस से मस नहीं होते। और क्या है - जो यों सब जान पर खेलने को तैयार हैं। महात्मा गाँधी के आने का इंतजार है। अब आएँ-तब आएँ। वह आए-आए-आए। वह मचान पर महात्मा जी पहुँचे... जै... जै... जै... खमोशी।

'मैं आप लोगों से ये केना चाता हूँ कि आप लोग विदेसी कपड़ा पहनना बिल्कुल छोड़ दें। ये सेतानी गौरमेंट...'

यहाँ पानी सर से हो कर पैरों से परनालों की तरह बहने लगा। कुदरत मूत रही थी। सेतानी गौवरमेंट, शैतानी गौवरमेंट की नानी। इस गाँधी से शैतानी गौवरमेंट की नानी मरती है। हा-हा शैतानी और नानी। अकबर साहब आप तो माशा अल्लाह शायर हैं। कोई राष्ट्रीय गीत रच डालिए। ये गुल और बुलबुल की कहानियाँ कब तक। कौम की ऐसी की तैसी, कौम ने मेरे साथ कौन-सा अच्छा सुलूक किया है जो मैं गुल और बुलबुल को छोड़ कर कौम के आगे दुम हिलाऊँ थिरकूँ।

मगर मैं यह कहता हूँ कि मैंने आखिर किसी के साथ कौन-सा बुरा सुलूक किया कि सारा जमाना हाथ धो कर पीछे पड़ा है। मेरे कपड़े मैले हैं...। उनसे बू आती है... बदबू सही। मेरी टोपी देख कर कहने लगा कि तेल का धब्बा पड़ गया, नई टोपी क्यों नहीं खरीदते? क्यों खरीदूँ नई टोपी... नई टोपी, नई टोपी, नई टोपी में क्या मोर के पंख लगे हैं? बहुत इतरा के चलते थे जो, वह जूतियाँ चटखारते फिरते हैं आज, हम औजे ताला-एलाल-ओ-गुहर को...

वाह वाह क्या बेतुकापन है। जार्ज पंजुम के ताज में हमारा हिंदुस्तानी हीरा है। ले गए चुरा के अंग्रेज, रह गए न मुँह देखते। उड़ गई सोने की चिड़िया, रह गई दुम हाथ में। अब चाहते हैं कि दुम भी हाथ से निकल जाए। न दुम छूटने पाए। शाबाश है मेरे पहलवान, लगाए जा जोर। दुम छूटी तो इज्जत गई। क्या कहा? इज्जत? इज्जत लेके चाटना है। सूखी रोटी और नमक खा कर क्या बाँका जिस्म निकल आया है। फाका हो तो फिर क्या कहना, और अच्छा है फिर तो बस इज्जत है और इज्जत के ऊपर पाक खुदा... खुदा बंदे पाक, अल्लाह बारीताला, रब्बुल इज्जत, परमेश्वर परमात्मा लाख नाम लिए जाओ। जल्दी-जल्दी और जल्दी क्या हुआ? रूहानी सुकून? बस तुम्हारे लिए यही काफी है। मगर मेरे पेट में दोजख है। दुआ करने से पेट नहीं भरता, पेट से हवा निकल जाती है। भूख और ज्यादा मालूम होने लगती है, भों-भों-भो...

अब उनका भौंकना शुरू हुआ तो रात भर जारी रहेगा। मच्छर अलग सता रहे हैं। तौबा है तौबा! एक जाली का पर्दा गर्मियों में बहुत आराम देता है। मच्छरों से निजात मिलती है। मगर क्या निजात क्या? दिन भर की मेहनत, चीख-पुकार, कड़ी धूप में घंटों एक जगह से दूसरी जगह घूमते-घूमते जान निकल जाती है। अम्मा कहा करती थीं, अकबर धूप में मत दौड़, आ मेरे पास आके लेट बच्चे। लू लग जाएगी तुझे बच्चे। एक मुद्दत हो गई उसे भी। अब तो ये बातें सपना मालूम होती हैं और मौलवी साहब हमेशा तारीफ करते थे। देखो, नालायकों, अकबर को देखो, उसे शौक है पढ़ने का। सपना, वो सारी बातें सपना मालूम होती हैं। मैं बस्ता-तख्ती लिए दौड़ता हुआ वापस आता था। अम्मा गोद में चिपटा लेती थीं। मगर क्या आराम था। उस वक्त भी क्या आराम था। ये सब चीजें मेरी किस्मत ही में नहीं। मगर जो मुसीबत मैं बर्दाश्त कर चुका, शायद ही किसी को उठानी पड़ी हों। उसे याद करने से फायदा? खैराती अस्पताल, नर्सें, डॉक्टर सब नाक-भों चढ़ाए और अम्मा का यह हाल कि करवट लेना मुहाल और उनके उगालदान में खून के डले के डले। मालूम होता था कि गोश्त के लोथड़े हैं... और मैं सबको खत पे खत लिखता था। यही सब जो रिश्तेदार बनते हैं। आइए अकबर भाई, आइए, आपसे तो बरसों से मुलाकात नहीं हुई। यही उन्हीं के माँ-बाप। क्या हो जाता अगर जरा और मदद कर देते। दुनिया भर के पाखंड पर पानी की तरह दौलत बहाते हैं। किसी रिश्तेदार की मदद करते वक्त मल-मल कर पैसा देते हैं और फिर अहसान जताना इतना कि खुदा की पनाह। एक दिन मैं कहीं बाहर गया हुआ था, उन्हीं महाशय की अम्मीजान, अम्मा को देखने आईं। मैं पहुँचा तो उन्हें आए चंद मिनट हुए थे। चेहरे से टपक रहा था कि उन्हें डर है कि जीवाणु उनके सीने के अंदर न घुस जाएँ। मगर बीमार को देखने आना फर्ज है। सवाब का काम है। यह सब तो अपनी जगह। उल्टे मुझे डाँटना शुरू कर दिया। कहाँ गए थे तुम अपनी अम्मा को छोड़ कर। इनकी हालत ऐसी नहीं कि इन्हें इस तरह छोड़ा जाए।

मरीज के मुँह पर इस तरह की बातें - मैं गुस्से से खौलने लगा। मगर मरता क्या न करता। अस्पताल का खर्च इन्हीं लोगों से लेना था। मेरी बीवी-बच्चे का ठिकाना इन्हीं लोगों के यहाँ था... मेरी शादी का जिसने सुना विरोध किया। मगर अम्मा बेचारी का सबसे बड़ा अरमान मेरी शादी थी। अकबर की दुल्हन ब्याह के लाऊँ, बस मेरी यह आखिरी

तमन्ना है। लोग कहते थे घर में खाने को नहीं। शादी किस बूते पर करोगी? अम्मा कहती थीं, खुदा रोजी देने वाला है। जब मेरा रिश्ता तय हो गया, शादी की तारीख निश्चित हो गई, शादी का दिन आ गया, तो वही लोग जो विरोध करते थे, सब बारात में जाने को तैयार होकर आ गए। अम्मा की सारी बची-बचाई पूँजी मेहमानदारी और शादी की रस्मों में खर्च हो गई। गैस की रोशनी, रेशमी अचकने, पुलाव, बाजा, मसनद, हँसी-मजाक, भीड़। खाने में कमी पड़ गई। बावर्ची ने चोरी की। बादशाह अली साहब का जूता चोरी गया। जमीन-आसमान एक कर दिया। अबे उल्लू के पट्ठे तूने जूता सँभाल कर क्यों नहीं रखा? जी हुजूर, कुसूर मेरा नहीं - मेहर का झगड़ा शुरू हुआ। मोज्जिल (मेहर, निकाह टूटने पर अदा की जाने वाली रकम) और मोअज्जल (निकाह के समय अदा की जाने वाली रकम) की बहस। मुँह दिखाई की रस्म। सलाम कराई की रस्म। मजाक, फूल, गाली-गलौज, शादी हो गई। अम्मा का अरमान पूरा हो गया... मोहर्रम अली बेचारा चालीस साल का हो गया, उसकी शादी नहीं हुई। अकबर मियाँ शादी करवा दीजिए शैतान रात को बहुत सताता है। शादी खुशी। कोई हमदर्द बात करने वाला जिसे अपने दिल की सारी बातें अकेले सुना दें। कोई औरत जिससे मोहब्बत कर सकें। दो घड़ी हँसे, बोलें, छाती से लगाएँ, प्यार करें - अरे मान भी जाव मेरी जान। मेरी प्यारी, मेरी सब कुछ। जुबान बेकार है। हाथ, पैर, सारा जिस्म, जिस्म का एक एक रोंगटा... क्यों आज मुझसे नाराज हो, बोलो। अरे, तुमने तो रोना शुरू कर दिया। खुदा के वास्ते बताओ, आखिर क्या बात है। देखो, मेरी तरफ देखो तो सही। वह आई हँसी, वह आई होंठो पर। बस अब हँस तो दो। क्या दो दिन की जिंदगी में बेकार का रोना-धोना। ओ... ओ... हो... यों नहीं यों - और... और जोर से मेरे सीने से लिपट जाओ... लखनऊ के कोठों की सैर मैंने भी की है। ऐसा गरीब नहीं हूँ कि दूर ही दूर से रंडियों को देख कर सिसकियाँ लिया करूँ। आइए हुजूर अकबर साहब, यह क्या है जो मुद्दतो से जो हमारी तरफ रुख ही नहीं करते। इधर कोई नई चलती हुई गजल कही हो तो इनायत फरमाइए। गा कर सुनाऊँ? लीजिए पान नौश फरमाइए ऐ, लो और लो, जरा दम तो लीजिए। नहीं आज तो माफ फरमाइए, फिर कभी। मैं तो आपकी खादिम हूँ, रुपए की गुलाम हूँ। समझती है मेरे पास टके नहीं। रुपए देख कर राजी हो गई। क्या सुनाऊँ हुजूर... तबला की थाप, सारंगी की आवाज, गाना-बजाना। फिर तो मैं था और वह थी और सारी रात थी। नींद जिसे आई हो वह काफिर। यह रातों का जागना, दूसरे दिन सरदर्द, थकावट, चिडचिड़ापन। अम्मा की बीमारी के जमाने उनकी पलँग की पट्टी से लगा घंटों बैठा रहता था और उनकी खाँसी। कभी-कभी तो मुझे खुद मालूम होने लगता, मालूम होता था कि हर खाँसी के साथ उसके सीने में एक गहरा जख्म और पड़ गया। हर साँस के साथ जैसे जख्मों पर से किसी ने तेज छुरी की बाढ़ चला दी। और वह घड़घड़ाहट, जैसे किसी पुराने खंडहर में लू चलने की आवाज होती है। डरावनी। मुझे अपनी माँ से डर मालूम होने लगता। इस हड्डी-चमड़े के ढाँचे में मेरी माँ कहाँ। मैं उनके हाथ पर हाथ रखता, धीरे से दबाता, उनकी आधी खुली, आधी बंद आँखें मेरी तरफ मुड़तीं, उनकी नजर मुझ पर होती। उस वक्त इस जर्जर, हारे हुए मुर्दा जिस्म भर में सिर्फ आँखें जिंदा होतीं। उनके होंठ हिलते। अम्मा-अम्मा आप क्या कहना चाहती हैं। जी... मैं अपना कान उनके होंठों के पास ले जाता। वह अपना हाथ उठा कर मेरे सिर पर रखतीं। मेरे बालों में उनकी उँगलियाँ मालूम होता था फँसी जाती हैं। और वह छुड़ाना नहीं चाहतीं। बहुत देर कर दी, जाओ तुम सो रहो... अम्मा यों ही पलँग पर लेटी हैं। एक महीना, दो महीना, तीन महीना, एक साल, दो साल, सौ साल, हजार साल। मौत का फरिश्ता आया। बदतमीज, बेहूदा कहीं का। चल निकल यहाँ से भाग। अभी भाग, वरना तेरी दुम काट लूँगा। डाँट पड़ेगी फिर बड़े मियाँ की। हँसता है। क्यों खड़ा है सामने दाँत निकाले। तेरे फरिश्ते की ऐसी-तैसी। तेरे फरिश्ते की...। सारी दुनिया की ऐसी-तैसी, मियाँ अकबर तुम्हारी ऐसी-तैसी। जरा अपनी काया पर गौर फरमाइए। फूँक दूँ तो उड़ जाए, मुशायरों में पढ़ेंगे तो चीख कर चिल्ला कर, बड़े बने हैं गुर्राने वाले। मुशायरों में तारीफ क्या हो जाती है कि समझते हैं... क्या समझते हैं बेचारे, समझेंगे क्या, बीबी जान कुछ समझने

भी दें। सुबह से शाम तक शिकायत, रोना-धोना। कपड़ा फटा है। बच्चे की टोपी खो गई, नई खरीद के ले आओ, जैसे मेरी अपनी नई टोपी है। कहाँ खो गई टोपी। मैं क्या जानूँ कहाँ खो गई। उसके साथ कोने-कोने में थोड़ी भागती फिरती हूँ। मुझे काम करना होता है, बर्तन धोना कपड़े सीना। सारे घर का काम मेरे जिम्मे है। मुझे किसी की तरह शेर कहने की फुर्सत नहीं। सुन लो खूब अच्छी तरह से मुझे काम करना होता है। मगर छत्ता छेड़ दिया, अब जान बचानी मुश्किल हुई। क्या कैंची की तरह जुबान चलाती है। माशा अल्लाह, खुदा बुरी नजर से बचाए। अच्छी तरह जानते हो मेरे पास पहनने को एक ठिकाने का कपड़ा नहीं है। लड़का तुम्हारा अलग नंगा घूमता है। मगर तुम हो मालूम होता है कोई वास्ता ही नहीं। जैसे किसी गैर के बीवी-बच्चे हैं। हाय अल्लाह, मेरी किस्मत फूट गई। अब रोना शुरू होने वाला है। मियाँ अकबर बेहतर यही है कि तुम चुपके से खिसक जाओ। इसमें शर्माने की क्या बात है, तुम्हारी मर्दानगी में कोई फर्क नहीं आता, खैरियत बस इसी में है कि खामोशी के साथ खिसक जाओ। हिजरत करने से एक रसूल की जान बची। मालूम नहीं ऐसे मौकों पर रसूल बेचारे क्या करते थे, औरतों ने उनकी नाक में भी दम कर रखा था। ऐ खुदा, आखिर तूने औरत क्यों पैदा की। मुझ जैसा गरीब कमजोर आदमी तेरी इस अमानत का भार अपने कंधों पर नहीं उठा सकता और कयामत के दिन मैं जानता हूँ क्या होगा। यही औरतें वहाँ भी ऐसी चीख-पुकार मचाएँगी, ऐसी-ऐसी अदाएँ दिखाएँगी, वह आँखें मारेंगी कि... वह आँखें मारेंगी कि अल्लाह मियाँ बेचारे खुद अपनी दाढ़ी खुजाने लगे। कयामत का दिन आखिर कैसा होगा। सूरज आसमान के बीचोबीच आग उगलता हुआ, मई, जून की गर्मी उसके सामने क्या होगी... गर्मी की तकलीफ तौबा-तौबा अरे तौबा। यह मच्छरों के मारे नाक में दम, नींद हराम हो गई। पिन-पिन, चठ। वह मारा। आखिर यह कमबख्त ठीक कान के पास आके क्यों भुनभुनाते हैं। खुदा करे कयामत के दिन मच्छर न हों, मगर क्या ठीक। कुछ ठीक नहीं। आखिर मच्छर और खटमल इस दुनिया में खुदा ने ही किसी वजह से पैदा किए? पता नहीं... पैगंबरों को मच्छर खटमल काटते हैं या नहीं। कुछ ठीक नहीं, कुछ ठीक नहीं। आपका नाम क्या है? मेरा क्या नाम है। कुछ ठीक नहीं। वाह-वाह-वाह, खुदा की इच्छा। इच्छा और रंडी और भिंडी। गलत, भिंडी है। मियाँ अकबर इतना भी अपनी हद से बाहर न निकलिए। और क्या है? नदी में डाल कर समुंदर चले? वाह। वह बच्चा क्या करेगा जो घुटनों के बल चले। अंगूर खट्टे, आपको खटास पसंद है? पसंद। पसंद से क्या होता है? चीज हाथ भी तो लगे। मुझे घोड़ा-गाड़ी पसंद है। मगर करीब पहुँचा नहीं कि वह दुलत्ती पड़ती है कि सर पर पाँव रखकर भागना पड़ता है। और मुझे क्या पसंद है? मेरी जान। मगर तुम तो मेरी जान से ज्यादा प्यारी हो... चलो हटो, बस रहने भी दो, तुम्हारी मीठी-मीठी बातों का मजा मैं खुब चख चुकी हूँ। क्यों क्या हुआ... हुआ क्या... मुझसे यह बेगैरती नहीं सही जाती। तुम जानते हो कि दिन भर लौंडी की तरह काम करती हूँ, बल्कि लौंडी से भी जबदतर। जब से मैं इस घर में आई, हूँ किसी खिदमतगारिन को एक महीने से ज्यादा टिकते नहीं देखा। मुझे साल भर से ज्यादा हो गए, मगर कभी जो जरा दम मारने की फुर्सत मिली हो। अकबर की दुल्हन यह करो, अकबर की दुल्हन वह करो... अरे-अरे क्या, हुआ क्या, तुमने तो फिर रोना शुरू किया। मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ... मुझे यहाँ से कहीं और ले जा के रखो। मैं शरीफजादी हूँ। सब कुछ तो सह लिया, अब मुझसे गाली बर्दाश्त न होगी। गाली-गाली, मालूम नहीं क्या गाली दी। मेरी बीवी पर गालियाँ पड़ने लगीं, या अल्लाह, या अल्लाह। इस बेगम कमबख्त का गला और मेरा हाथ। उसकी आँखे निकली पड़ीं, जुबान बाहर लटकने लगी। हो जा अब इस दुनिया से रुख्सत। खुदा के लिए मुझे छोड़ दो। कुसूर हुआ माफ करो, अकबर मैंने तुम्हारे साथ एहसान भी किए हैं। ...अहसान तो जरूर किए हैं। अहसानों का शुक्रिया अदा करता हूँ मगर अब तुम्हारा वक्त आ गया। क्या समझ कर मेरी बीवी को गालियाँ दी थीं। बस खत्म, आखिरी दुआ माँग लो। गला घोंटने से सर काटना बेहतर है। बालों को पकड़ कर सर को उठाया, जबान एक तरफ निकली पड़ रही है। खून टपक रहा है। आँखें घूर रही हैं... या अल्लाह आखिर, मुझे क्या

हो गया। खून का समंदर। मैं खून के समंदर में डूबा जा रहा हूँ। चारों तरफ से लाल-लाल गोले मेरी तरफ बढ़ते चले आ रहे हैं। वह आया, वह आया। एक, दो, तीन सब मेरे सर पर आ कर फटेंगे। कहीं यह दोजख तो नहीं। मगर ये तो गोले हैं, आग के शोले नहीं। मेरे तन-बदन में आग लग गई। मेरे रोंगटे जल रहे हैं। दौड़ो, अरे दौड़ो, खुदा के लिए दौड़ो। मेरी मदद करो, मैं जला जा रहा हूँ। मेरे सर के बाल जलने लगे। पानी, पानी कोई सुनता क्यों नहीं? खुदा के वास्ते मेरे सर पर पानी डालो। क्या इन जलते हुए अंगारों पर से मुझे नंगे पैर चलना पड़ेगा? क्या मेरी आँखों में दहकते हुए लोहे की सलाखें डाली जाएँगी? क्या मुझे खौलता हुआ पानी पीने को मिलेगा? क्या मुझे पीब खानी पड़ेगी? ये शोले मेरी तरफ क्यों बढ़ते चले आ रहे हैं? ये शोले हैं या भाले? आग के त्रिशूल। जख्म की भी तकलीफ और जलने की भी...

यह किसके चीखने की आवाज आई? मैं तो सुन चुका हूँ इस आवाज को। अं, अ, अ, ...ओ, ओ, ओ... आवाज दूर होती जाती है। मेरे लड़के ने आखिर क्या कसूर किया है? मेरे लड़के को किस जुर्म की सजा मिल रही है? मेरा लड़का तो अभी चार बरस का है। उसे माफ कर देना चाहिए। मैं गुनहगार हूँ, मैं खतावार हूँ। यह कौन आ रहा है मेरे सामने से? अरे मआजअल्लाह साँप चिमटे हुए हैं उसकी गर्दन से। उसके पिस्तान (उरोज) को काट रहे हैं... ऐ हुजूर। आदाब अर्ज है। ऐ हुजूर भूल गए हम गरीबों को। मैं हूँ, मुन्नी जान। कोई ठुमरी, कोई दादरा, कोई गजल। ऐ हैं आप तो जैसे डर जाते हैं हुजूर, ये साँप आपसे कुछ नहीं बोलेंगे। उनका भी अजब लतीफा है। मैं जब यहाँ दाखिल हुई तो दरोगा साहब ने कहा, बी मुन्नी जान, सरकार का हुक्म है कि पाँच बिच्छू तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर किए जाएँ। मैं हुजूर सहम गई। बचपन से मुझे बिच्छुओं से नफरत थी। मैंने हुजूर बहुत हाथ-पैर जोड़े, मगर दरोगा साहब ने कहा कि सरकार के हुक्म पर अमल करना उनका फर्ज है। तब मैंने कहा, अच्छा आप मुझे सरकार के दरबार में पहुँचा दें। मैं खुद उनसे निवेदन करूँगी। दरोगा साहब बेचारे भले आदमी थे, मुझे अपने पास बुला के बिठाया। मेरे गालों पर हाथ फेरे, आखिरकार राजी हो गए पहले तो मुझे कई घंटे इंतजार करना पड़ा। दरोगा साहब ने कहा इस वक्त सरकार दूतों की कौंसिल कर रहे हैं। जब उससे फुर्सत होगी, तब मेरी पेशी होगी। मैंने जो यह सुना तो कोशिश की कि झाँक कर अपने दूत महोदय का जलवा देख लूँ। मगर दरवाजे के दरबान मुए मुस्टंडे देव ने मुझे धक्का दे कर अलग कर दिया। खैर हुजूर आखिरकार मेरी बारी आई, मेरा दिल धड़-धड़ कर रहा था कि देखूँ क्या होता है। सरकार के दरबार में दाखिल होते ही मैं घुटनों के बल गिर पड़ी। मेरी अपनी जबान से तो कुछ बोला न जाता था। दरोगा साहब ने मेरा मुद्दा बयान किया। इतने में हुक्म हुआ, खड़ी हो। मैं हुजूर खड़ी हो गई। तो सरकार खुद उठ कर मेरे पास तशरीफ लाए। बड़ी-सी सफेद दाढ़ी, गोरा चिट्टा रंग और मेरी तरफ मुस्करा के देखा... फिर मेरा हाथ पकड़ कर बगल के कमरे में ले गए। मेरी हुजूर समझ में नहीं आता था कि आखिर माजरा क्या है...मगर हुजूर देखने ही में बुड्ढे मालूम होते हैं... ऐसे मर्द मैंने दुनिया में तो देखे नहीं। और आपकी दुआ से हुजूर मेरे यहाँ बड़े-बड़े रईस आते थे...

खैर, तो हुजूर बाद में सरकार ने फरमाया कि सजा तो मुझे जरूर मिलेगी क्योंकि उनका इंसाफ तो सबके साथ बराबर है। मगर बजाय बिच्छू के मुझे दो साँप मिले जो बस मेरे पिस्तान चाटा करते हैं। सच पूछिए हुजूर तो इसमें तकलीफ कुछ नहीं और मजा ही है... मगर आप तो मुझसे डर जाते हैं। अकबर साहब, ऐ, हुजूर अकबर साहब... कोई ठुमरी, कोई दादरा, कोई गजल...

या अल्लाह मुझे जहन्नुम की आग से बचा। तू रहम करने वाला है। मैं तेरा एक नाचीज, गुनहगार बंदा, तेरे हुजूर में हाथ बाँधे खड़ा हूँ... मगर कुछ भी हो जिल्लत मुझसे बर्दाश्त न होगी। मेरी बीवी पर गालियाँ पड़ने लगीं। मगर मैं क्या करूँ। भूखा मरूँ? हड्डियों का एक ढाँचा, उस पर एक खोपड़ी, खट-खट करती सड़क पर चली जा रही है। अकबर साहब, आपके जिस्म का गोश्त क्या हुआ? आपका चमड़ा किधर गया? जी मैं भूखा मर रहा हूँ, गोश्त अपना मैंने गिद्धों को खिला दिया, चमड़े के तबले बनवाकर बी मुन्नी जान को तोहफे में दे दिए। कहिए क्या खूब समझी। आपको ईर्ष्या होती हो तो अल्लाह का नाम ले कर मेरी पैरवी कीजिए। मैं किसी की पैरवी नहीं करता। मैं आजाद हूँ, हवा की तरह से। आजादी की आजकल अच्छी हवा चली है। पेट में आँतें कुलहो अल्लाह पढ़ रही हैं और आप हैं कि आजादी के चक्कर में हैं। मौत या आजादी। न मुझे मौत पसंद है न आजादी।

कोई मेरा पेट-भर दे।

पिन, पिन, पिन, चट, हट तेरे मच्छर की... टन, टन, टन... टुन, टुन, टुन...

जन्नत की बशारत

- सज्जाद ज़हीर

ह्रास के इस काल में भी लखनऊ इस्लामी शिक्षा का केंद्र है। विभिन्न अरबी मदरसे आजकल के संकटकालीन दौर में भी हिदायत की शमा रौशन किए हुए हैं। हिंदुस्तान के हर कोने से ईमान की गर्मी रखने वाले हृदय यहाँ आ कर धार्मिक शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा इस्लाम की अजमत कायम रखने में मददगार होते हैं। बदकिस्मती से वे दो संप्रदाय जिनके मदरसे लखनऊ में हैं। एक-दूसरे को जहन्नुमी समझते हैं। लेकिन अगर हम अपनी आँखों से इस सांप्रदायीकरण की ऐनक उतार दें और ठंडे दिल से इन दोनों गिरोह के शिक्षकों और छात्रों पर नजर डालें तो हम उन सबके चेहरों पर ईमानी नूर की झलक पाएँगे जिससे उनके दिल-ओ-दिमाग मुनव्वर (दीप्त) हैं। उनके लंबे कुर्ते और चोंगे, उनकी कफश (खास बनावट की जूती) और स्लीपर, उनकी दुपल्ली-टोपियाँ, उनका घुटा हुआ गोल सर और उनकी पवित्र दाढ़ियाँ जिनके एक-एक बाल को हूरें (अप्सराएँ) अपनी आँखों से मलेंगी, इस सबसे उनकी पवित्रता और तपस्या टपकती है। मौलवी मोहम्मद दाऊद साहब बरसों से एक मदरसे में पढ़ाते थे और अपनी कुशाग्रता के लिए प्रसिद्ध थे। इबादत गुजारी का यह आलम था कि रमजान मुबारक में रात की रात कुरान व नमाज पढ़ने में गुजर जाती थी और उन्हें खबर तक न होती थी। दूसरे दिन पढ़ाते समय जब नींद परेशान करती तो छात्र समझते कि मौलाना साधना में लीन हैं और उठ कर चले जाते।

रमजान का मुबारक महीना हर मुसलमान के लिए रहमते इलाही है। खास तौर पर जब रमजान मई और जून के लंबे दिन और तपती हुई धूप के साथ पड़े। जाहिर है इंसान जितनी ज्यादा तकलीफ बर्दाश्त करता है उसी कदर ज्यादा सवाब का अधिकारी होता है। इन शदीद गर्मी के दिनों में अल्लाह का हर नेक बंदा एक बिफरे हुए शेर की मानिंद होता है जो राहे खुदा में जेहाद करता है। उसका सूखा हुआ चेहरा और धँसी हुई आँखें पुकार-पुकार कर कहती हैं, 'ऐ वो गिरोह जो ईमान नहीं लाते और ऐ वो बदनसीबों जिनके ईमान डगमगा रहे हैं, देखो, हमारी सूरत देखो और शर्मिंदा हो। तुम्हारे दिलों पर, तुम्हारी सुनने की ताकत पर और देखने की नजर पर अल्लाह पाक ने मोहर लगा दी है। मगर वो जिनके दिल खुदा के खौफ से थर्रा रहे हैं, इस तरह उसकी फरमाबरदारी करते हैं।'

यों तो माहे मुबारक का हर दिन और हर रात इबादत के लिए है मगर सबसे ज्यादा महत्ता शबेकद्र (रमजान की 27 तारीख) की है। उस रात खुदा पाक के दरवाजे दुआओं की स्वीकृति के लिए खोल दिए जाते हैं। गुनाहगारों की तौबा (क्षमा) कुबूल कर ली जाती है और मोमिन बेहद व बेहिसाब सवाब (पुण्य) लूटते हैं। खुशनसीब हैं वो बंदे जो इस शुभ रात को नमाज और कुरान पढ़ने में बिताते हैं। मौलवी दाऊद साहब कभी ऐसे अच्छे मौकों पर कोताही न करते थे। इंसान हर-हर पल औ क्षण न मालूम कितने गुनाह करता है। अच्छे-बुरे हजारों ख्याल दिमाग से गुजरते हैं। कयामत के हौलनाक दिन जब हर शख्स के गुनाह और सवाब तौले जाएँगे और रत्ती-रत्ती का हिसाब देना होगा तो क्या मालूम क्या नतीजा हो। इसलिए बेहतर यही है कि जितना ज्यादा सवाब मुमकिन है हासिल कर लिया जाए। मौलवी दाऊद साहब को जब लोग मना करते थे इस कदर ज्यादा इबादत न किया करें तो वह हमेशा यही जवाब देते।

मौलाना का सिन यही कोई पचास बरस का होगा। हालाँकि कद छोटा था लेकिन बदन अच्छा था। गेंहुआ रंग, तिकुन्नी दाढ़ी बाल खिचड़ी थे। मौलाना की शादी उन्नीस या बीस साल की उम्र में हो गई थी। आठवें बच्चे की पैदाइश के वक्त उनकी पहली बीवी का इंतेकाल हो गया। दो साल बाद उन्चास बरस के सिन में मौलाना ने दूसरा निकाह किया। मगर इन नई ब्याहता की वजह से मौलाना की जान संकट में रहती। उनके और मौलवी दाऊद साहब के सिन में करीब बीस साल का फर्क था। गो कि मौलाना उन्हें यकीन दिलाया करते कि उनकी दाढ़ी के चंद बाल जुकाम की वजह से सफेद हो गए हैं, लेकिन उनकी जवान बीवी फौरन दूसरे सुबूत पेश करती और मौलाना को चुप हो जाना पड़ता था।

एक साल के शदीद इंतजार के बाद शबे कदर फिर आई। अफतार (रोजा खोलने) के बाद मौलाना घंटे-आध घंटे लेटे उसके बाद स्नान करके मस्जिद में नमाज व दुआ पढ़ने के लिए फौरन चले गए। मस्जिद में मुसलमानों का हुजूम था। अल्लाह के अकीदत मंद और नेक बंदे, तहमतें बाँधे लंबी-लंबी डकारें लेते हुए मौलाना दाऊद साहब से हाथ मिलाने के लिए लपके। मौलाना के चहरे से नूर टपक रहा था और उनकी बातें गोया उनके ईमान की शुद्धता की गवाह बन कर सारे मजमे को प्रभावित कर रही थी। इशा (रात की नमाज के बाद) डेढ़-दो बजे रात तक सवाब हासिल करने का एक लगातार सिलसिला रहा। उसके बाद सुबह होने के कुछ घंटे पहले ठंडी हवा की लिज्जत से मौलाना के जिस्म को जैसे नई जान मिल गई और मौलाना घर वापस चले आए। जमाही पर जमाही चली आती थी। शीरमाल, पुलाव और खीर से भरा हुआ पेट आराम ढूँढ़ रहा था। खुदा-खुदा करके मौलाना घर वापस पहुँचे। रूह और जिस्म के दरम्यान सख्त जंग जारी थी। मुबारक रात के अभी दो-तीन घंटे बाकी थे, जो इबादत में बसर किए जा सकते थे। मगर जिस्म को भी सुकून और नींद की बेइंतहा ख्वाहिश थी। आखिरकार इस पुराने परेहेजगार इबादत गुजार ने रूहानियत (अध्यात्म) का दामन थाम लिया और आँखे मल कर नींद भगाने की कोशिश की।

घर में अँधेरा छाया हुआ था। लालटेन बुझी पड़ी थी। मौलाना ने दियासलाई इधर-उधर टटोली मगर वह न मिलनी थी, न मिली। सहन के कोने में उनकी बीवी का पलँग था। मौलाना दबे कदम डरते-डरते उधर बढ़े और आहिस्ता से बीवी का शाना हिलाया। गर्मियों की तारों-भरी रात और पिछले पहर की खुनकी में मौलवी साहब की जवान बीवी गहरी नींद सो रही थी। आखिरकार उन्होंने करवट बदली और आधे जागते, आधे सोते हुए धीमी आवाज में पूछा, 'ऐ क्या है?'

मौलाना इस नर्म आवाज के सुनने के आदी न थे। हिम्मत करके एक लफ्ज बोले, 'दियासलाई।' मौलवी साहब की बीवी पर अभी तक नींद हावी थी। मगर इस अर्द्धनिद्रा के आलम में, रात की तारीकी, सितारों की जगमगाहट और हवा की ठंडक ने जवानी पर अपना जादू कर दिया था। यकबारगी उन्होंने मौलाना का हाथ पकड़ कर अपनी तरफ खींचा और उनके गले में दोनों बाहें डाल कर अपने गाल को उनके मुँह पर रख कर लंबी-लंबी साँसे लेते हुए कहा, 'आओ लेटो।'

एक लम्हा के लिए मौलाना का दिल भी फड़क गया। मगर दूसरे लम्हे में उन्हें हव्वा की आरजू, आदम का पहला गुनाह, जुलेखा का इश्क, युसुफ की चाक दामानी, गरज औरत के गुनाहों की पूरी सूची याद आ गई और अपने पर

काबू हो गया। चाहे यह उम्र का तकाजा हो या खुदा का खौफ या रूहानियत की वजह से, बहरहाल मौलाना फौरन अपनी बीवी के हाथ से निकल कर उठ खड़े हुए और पतली आवाज से फिर पूछा, 'दियासलाई कहाँ है?'

एक मिनट में औरत की नींद और उसकी बेसाख्ता ख्वाहिश की उमंग दोनों गायब होकर कटाक्ष-भरे गुस्से में बदल गई। मौलाना की बीवी पलँग पर उठ बैठी और जहर से बुझी हुई जबान से एक-एक लफ्ज तौल-तौल कर कहा, 'बुढ्ढा मुआ, आठ बच्चों का बाप बड़ा नमाजी बना है, रात की नींद हराम कर दी। दियासलाई-दियासलाई, ताक पर पड़ी होगी।'

एक सचमुच बूढ़े मर्द का दिल दुखाने के लिए इससे ज्यादा तकलीफ देने वाली और कोई बात नहीं हो सकती कि उसकी जवान बीवी उसे बुड्ढा कहे। मौलाना काँप गए मगर कुछ बोले नहीं। उन्होंने लालटेन जला कर एक तख्त पर जानमाज बिछाई और कुरान पढ़ने में मशगूल हो गए। मौलाना की तो नींद उड़ गई थी मगर तकरीबन आधे घंटे के बाद भरे हुए पेट में उठती भापों ने जिस्म को चूर करके आँखों को दबाना शुरू कर दिया... तीन-चार मरतबा ऊँघ कर मौलाना जानमाज ही पर फबा अइय्या-अइय्या कहते-कहते सो गए।

पहले तो उन पर नींद में डूब जाने की कैफियत जारी रही, इसके बाद उन्होंने यकायक महसूस किया कि वह अकेले, एकदम अकेले, एक तारीक मैदान में खड़े हुए हैं और खौफ से काँप रहे हैं। थोड़ी देर बाद यह अँधेरा रौशनी में बदलने लगा और किसी ने उनके पहलू से कहा, 'सिजदा कर तू बारगाहेबारी ताला में (पैदा करने वाले के दरबार में) है।' कहने की देर थी कि मौलवी सिज्दे में गिर पड़ा और एक दिल दहला देने वाली आवाज, बादल की गरज की तरह चारों तरफ गूँजती हुई मौलवी के कान तक आई, 'मेरे बंदे, हम तुझसे खुश हैं, तू हमारी इबादत में तमाम जिंदगी इस कदर डूबा रहा कि तूने कभी अपनी अक्ल और अपनी सोच को जुंबिश तक न दी जो दोनों शैतानी ताकतें हैं और कुफ्र (पाप) और इल्हाद की जड़ हैं। इंसानी समझ यकीन और ईमान की दुश्मन है। तूने इस राज को खूब समझा और तूने कभी ईमान के नूर को अकल के जंग से तारीक न होने दिया। तेरा इनाम कभी न खत्म होने वाली जन्नत है जिसमें तेरी हर ख्वाहिश पूरी की जाएगी।' आवाज यह कह कर खामोश हो गई।

थोड़ी देर तक मौलवी पर रोबे खुदाबंदी इस कदर हावी रहा कि सज्दे से सिर उठाने की हिम्मत न हुई। कुछ देर बाद जब दिल की धड़कन कम हुई तो उन्होंने लेटे-लेटे कनखियों से अपने दाएँ-बाएँ नजर डाली। उन आँखों ने कुछ और ही मंजर देखा। सुनसान मैदान एक आलीशान गोल कमरे में बदल गया था, उस पर कमरे की दीवारें जवाहरात की थीं, जिन पर अजीब-ओ-गरीब नक्काशियाँ बनी हुई थीं। लाल, हरे, पीले, सुनहरे और रुपहले जगमगाते हुए फूल और फल, मालूम होता था दर-ओ-दीवार से टपके पड़ते हैं। रोशनी दीवारों से छन-छन कर आ रही थी लेकिन ऐसी रोशनी जिससे दीवारों को ठंड पहुँचे। मौलाना उठ बैठे और चारों तरफ नजर दौड़ाई।

अजीब-अद्भुत कमरे के चारों तरफ की दीवारों पर कोई साठ या सत्तर आदमकद खिड़कियाँ थीं और हर खिड़की के सामने एक छोटा-सा दरीचा। हर एक दरीचे पर एक हूर खड़ी हुई थी। मौलाना जिस तरफ नजर फेरते, हूरें उनकी तरफ देख कर मुस्करातीं और दिल को लुभाने वाले इशारे करतीं। मगर मौलाना झेंप कर आँखें झुका लेते, दुनिया का तहजीबयाफ्ता परहेजगार इस वजह से शर्मिंदा था कि ये सब की सब हूरें सिर से पैर तक नंगी थीं। सहसा मौलाना

ने जो अपने जिस्म पर नजर डाली तो वह खुद भी इसी नूरानी जामें में थे। घबड़ा कर उन्होंने इधर-उधर देखा कि कोई हँस तो नहीं रहा है, मगर सिवाए उन हूरों के कोई भी नजर न आया। दुनिया की लाज हालाँकि बिल्कुल गायब नहीं हुई थीं, लेकिन उसके अस्तित्व की सबसे बड़ी वजह गैरों का कटाक्ष और व्यंग्य जन्नत में कहीं नाम को भी न था। मौलाना की घबड़ाहट कम हुई। उनकी धमनियों में जवानी का खून नए सिरे से दौड़ रहा था। वह जवानी जिसका ह्रास नहीं।

मौलाना ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा और मुस्कराते हुए एक खिड़की की तरफ बढ़े। हूर आगे बढ़ी और उन्होंने उस पर सिर से पैर तक नजर डाली। उसके जिस्म का दहकता हुआ चंपई रंग, उसकी कटीली आँखें, उसकी दिल को लुभाने वाली मुस्कुराहट। इस स्वर्गीय सौंदर्य से मौलाना की आँखें हटती ही न थीं लेकिन इंसान एक अच्छी चीज से भला कब तक सैर होता है। मौलाना के कदम उठे और वह दूसरी हूर की तरफ बढ़े। इस तरह वह हर दर जा कर थोड़ी-थोड़ी देर रुकते। उन जन्नती हस्तियों के हर-हर अंग को गौर से देखते और मुस्करा कर दुरूद (एक धार्मिक मंत्र) पढ़ते हुए आगे बढ़ जाते। किसी के घूँघर वाले बालों की स्याही उन्हें सबसे ज्यादा पसंद आती, किसी के गुलाबी गाल, किसी के उन्नाबी होंठ, किसी की सुडौल टाँगे, किसी की पतली उँगलियाँ, किसी की नशीली आँखें, किसी की नुकीली छातियाँ, किसी की नाजुक कमर, किसी का नर्म पेट। आखिरकार एक हूर की प्यारी अदा ने मौलाना का दिल मोह लिया। वह उचक कर उसके हुजरे (कक्ष) में दाखिल हो गए और उसे बेसाख्ता अपने सीने से लगा लिया। मगर अभी लब से लब मिले ही थे कि पीछे से कहकहे की आवाज आई। इस बेमौका हँसी पर मौलाना के गुस्से की इंतहा न रही। उनकी आँखें खुल गईं। सूरज निकल आया था। मौलाना जानमाज पर पेट के बल पड़े हुए कुरान पाक को सीने से लगाए थे। उनकी बीवी पहलू में खड़ी हँस रही थी।

गर्मियों की एक रात

- सज्जाद ज़हीर

मुंशी बरकत अली इशा की नमाज पढ़ कर चहल कदमी करते हुए अमीनाबाद पार्क तक चले आए। गर्मियों की रात, हवा बंद थी। शर्बत की छोटी-छोटी दुकानों के पास लोग खड़े बातें कर रहे थे। लौंडे चीख-चीख कर अखबार बेच रहे थे। बेले के हार वाले हर भले मानुष के पीछे हार ले कर पलकते। चौराहे पर ताँगा और इक्का वालों की लगातार पुकार जारी थी।

'चौक। एक सवारी। चौक, मियाँ चौक पहुँचा दूँ?'

'ऐ हुजूर, कोई ताँगा-वाँगा चाहिए?'

'हार बेले के, गजरे मोती के।'

'क्या मलाई की बरफ है!'

मुंशी जी ने एक हार खरीदा, शरबत पिया और पान खा कर पार्क के अंदर दाखिल हुए। बेंचों पर बिल्कुल जगह न थी। लोग नीचे घास पर लेटे हुए थे। चंद बेसुरे गाने के शौकीन इधर-उधर शोर मचा रहे थे। कुछ लोग चुप बैठे, धोतियाँ खिसका कर बड़े इत्मीनान से अपनी टाँगे और रानें खुजाने में व्यस्त थे। इस बीच में मच्छरों पर भी झपट-झपट कर हमले करते जाते। मुंशी जी क्योंकि पायजामा पहनते थे, इसलिए उन्हें इस बदतमीजी पर बहुत गुस्सा आया। अपने जी में उन्होंने कहा, इन कंबख्तों को कभी तमीज नहीं आएगी। इतने में एक बेंच पर से किसी ने उन्हें पुकारा, 'मुंशी बरकत अली!'

मुंशी जी मुड़े।

'आख्खा लाला जी, आप हैं। कहिए मिजाज तो अच्छे हैं?' मुंशी जी जिस दफ्तर में नौकर थे, लाला जी उसके हेड क्लर्क थे। मुंशी जी उनके मातहत थे। लाला जी ने जूते उतार दिए थे और बेंच के बीचों-बीच पैर उठा कर अपना भारी-भरकम जिस्म लिए बैठे थे। वह अपनी तोंद पर नर्मी से हाथ फेरते जाते और बातें कर रहे थे। मुंशी जी लाला साहब के सामने आ कर खड़े हो गए।

लाला जी हँस कर बोले, 'कहो मुंशी बरकत अली, ये हार-वार खरीदे हैं, क्या इरादे हैं...' और यह कह कर जोर से कहकहा लगा कर अपने दोनों साथियों की तरफ दाद तलब करने को देखा। उन्होंने लाला जी की मंशा देखकर हँसना शुरू कर दिया।

मुंशी जी भी रूखी फीकी हँसी हँसे, 'जी इरादे क्या हैं, हम तो आप जानिए गरीब आदमी ठहरे। गर्मी के मारे दम नहीं लिया जाता। रातों की नींद हराम हो गई। यह हार ले लिया शायद दो घड़ी आँख लग जाए।'

लाला जी ने अपने गंजे सिर पर हाथ फेरा और हँसे, 'शौकीन आदमी हो मुंशी, क्यों न हो' और यह कह कर फिर अपने साथियों से बातें करने में व्यस्त हो गए। मुंशी जी ने मौका गनीमत जान कर कहा, 'अच्छा लाला जी चलते हैं, आदाब अर्ज है।' और यह कह कर आगे बढ़े। दिल ही दिल में कहते थे, दिन-भर की घिस-घिस के बाद यह लाला कंबख्त सर पड़ा। पूछता है, 'इरादे क्या हैं?' हम कोई रईस ताल्लुकेदार हैं कहीं के कि रात को बैठ कर मुजरा सुनें और कोठों की सैर करें। जेब में कभी चवन्नी से ज्यादा हो भी सही। बीवी-बच्चे, साठ रुपया महीना, ऊपर की आमदनी का कुछ ठीक नहीं, आज न जाने क्या था जो एक रुपया मिल गया। ये देहाती काम करने वाले, कंबख्त रोज-ब-रोज चालाक होते जाते हैं। घंटों की झक-झक के बाद जेब से टका निकालते हैं और फिर समझते हैं कि गुलाम खरीद लिया है। सीधी बात नहीं करते। कमीने-नीच दर्जे के लोग, इनका सिर फिर गया है। आफत हम बेचारे शरीफ लोगों की है। एक तरफ तो नीचे दर्जे के लोगों के मिजाज नहीं मिलते, दूसरी तरफ बड़े साहब और सरकार की सख्ती बढ़ती जाती है। अभी दो महीने का जिक्र है, बनारस के जिले में दो मोहर्रिर बेचारे रिश्वतखोरी के जुर्म में बरखास्त कर दिए गए। हमेशा यही होता है। गरीब बेचारा पिसता है। बड़े अफसर का बहुत हुआ तो एक जगह से दूसरी जगह भेज दिए गए।

'मुंशी जी साहब!' किसी ने बाजू से पुकारा। जुम्मन चपरासी की आवाज।

'मुंशी जी ने कहा, 'अक्खां, तुम हो जुम्मन' मगर मुंशी जी चलते रहे, रुके नहीं। पार्क से मुड़ कर नजीराबाद पहुँच गए। जुम्मन साथ-साथ हो लिया। दुतले-पतले, दबा हुआ कद, मखमल की किश्तीनुमा टोपी पहने, हार हाथ में लिए आगे-आगे मुंशी जी और उनसे कदम दो कदम पीछे साफा बाँधे, अंगरखा पहने, लंबा-चौड़ा चपरासी जुम्मन।

मुंशी जी ने सोचना शुरू किया कि आखिर इस वक्त जुम्मन का मेरे साथ-साथ चलने का क्या मतलब है?

'कहो भई जुम्मन, क्या हाल है? अभी पार्क में हेडक्लर्क साहब से मुलाकात हुई थी। वह भी गर्मी की शिकायत करते थे।'

'अजी मुंशी जी, क्या अर्ज करूँ, एक गर्मी सिर्फ क्या थोड़ी है, जो मारे डालती है। साढ़े चार पाँच बजे दफतर से छुट्टी मिली, उसके बाद सीधे वहाँ से बड़े साहब के यहाँ घर पर हाजिरी देनी पड़ी। अब जा कर वहाँ से छुटकारा हुआ तो घर जा रहा हूँ। आप जानिए कि दस बजे सुबह से आठ बजे तक दौड़-धूप रहती है। कचहरी के बाद तीन बार दौड़-दौड़ कर बाजार जाना पड़ा। बर्फ, तरकारी, फल सब खरीद कर लाओ, ऊपर से डाँट अलग से पड़ती है, आज दामों में टका ज्यादा क्यों है? ये फल सड़े क्यों हैं? आज जो आम खरीद कर ले गया था, वो बेगम को पसंद नहीं आए। वापसी का हुक्म हुआ। मैंने कहा, हुजूर, अब रात को भला ये वापस क्या होंगे। तो जवाब मिला, हम कुछ नहीं जानते, कूड़ा थोड़ी खरीदना है। सो हुजूर ये रुपए के आम गले पड़े। आम वाले के यहाँ गया तो एक तो तू-तू मैं-मैं करनी पड़ी, रुपए के आम बारह आने के वापस हुए, चवन्नी की चोट पड़ी। महीना का खत्म और घर में हुजूर कसम ले लीजिए जो सूखी रोटी भी खाने को हो, कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ और कौन-सा मुँह लेकर जोरू के सामने जाऊँ।'

मुंशी जी घबड़ाये, आखिर जुम्मन का मंशा इस सारी दास्तान को बयान करने का क्या था। कौन नहीं जानता कि गरीब तकलीफ उठाते हैं। और भूखे मरते हैं। मगर मुंशी जी का इसमें क्या कुसूर। उनकी जिंदगी खुद कौन बहुत आराम से कटती है। मुंशी जी का हाथ बेइरादे अपनी जेब की तरफ गया। वह रुपया जो आज उन्हें ऊपर से मिला था सही-सलामत जेब में मौजूद था।

'ठीक कहते हो मियाँ जुम्मन, आजकल के जमाने में गरीबों की मरन है। जिसे देखो, यही रोना रोता है। कुछ घर में खाने को नहीं। सच पूछो तो सारे आसार बताते हैं कि कयामत करीब है। दुनिया भर के जालिए तो चैन से मजे उड़ाते हैं और जो बेचारे अल्लाह के नेक बंदे है उन्हें हर किस्म की मुसीबत और तकलीफ बर्दाश्त करनी होती है।

जुम्मन चुपचाप मुंशी जी की बातें सुनता, उनके पीछे-पीछे चलता रहा। मुंशी जी ये सब कहते तो जाते थे मगर उनकी घबड़ाहट भी बढ़ती जाती थी। मालूम नहीं उनकी बातों का जुम्मन पर क्या असर हो रहा था।

'कल जुमा की नमाज के बाद मौलाना साहब ने कयामत के आसार पर तकरीर फरमाई थी। मियाँ जुम्मन सच कहता हूँ, जिस-जिस ने सुना उसकी आँखों में आँसू जारी थे। भाई, दरअसल यह सब हम सभी की काली करतूतों का नतीजा है। खुदा की तरफ से जो कुछ अजाब (तकलीफें) हम पर नाजिल हों वह कम हैं। कौन-सी बुराई है, जो हम में नहीं। इससे कम कुसूर पर अल्लाह ने बनी इसराइल (अरब का एक कबीला यहूदी) पर जो मुसीबतें नाजिल कीं, उनका ख्याल करके बदन के रौंगटे खड़े हो जाते हैं। मगर वह तो तुम जानते ही होगे।'

जुम्मन बोला, 'हम गरीब आदमी मुंशी जी, भला ये सब इल्म की बातें क्या जानें। कयामत के बारे में तो मैंने सुना है, मगर हुजूर यह बनी इसराइल बेचारे कौन थे?'

यह सवाल सुनकर मुंशी जी को जरा सुकून हुआ। खैर, गरीबी और फाँके से गुजर कर बातचीत का सिलसिला अब कयामत व बनी इसराइल तक पहुँच गया था। मुंशी जी खुद बहुत ज्यादा इस बारे में न जानते थे, मगर इन विषयों पर घंटों बातें कर सकते थे।

'ए, वाह मियाँ जुम्मन वाह! तुम अपने को मुसलमान कहते हो और यही नहीं जानते कि बनी इसराइल किस चिड़िया का नाम है! मियाँ सारा कलाम पाक तो बनी इसराइल के जिक्र से भरा पड़ा है। हजरत मूसा कलीम उल्लाह का नाम भी तुमने सुना है?'

'जी क्या फरमाया आपने?' कलीम उल्लाह?'

'अरे भई हजरत मूसा... मू...सा।'

'मूसा वही तो नहीं जिन पर बिजली गिरी थी?'

मुंशी जी जोर से ठट्ठा मार कर हँसे। अब उन्हें बिल्कुल इत्मीनान हो गया। चलते-चलते वह कैसरबाग के चौराहे तक आ पहुँचे थे। यहाँ पर तो जरूर ही इस भूखे चपरासी का साथ छूटेगा। रात को इत्मीनान से जब कोई खाना खा कर, नमाज पढ़ कर दम भर को दिल बहलाने के लिए चहल कदमी को निकले तो एक गरीब भूखे इंसान का साथ-साथ हो जाना, जिससे पहले से परिचय भी हो, कोई खुशगवार बात नहीं। मगर मुंशी जी आखिर करते क्या! जुम्मन को कुत्ते की तरह दुत्कार तो सकते न थे क्योंकि एक तो कचहरी में रोज का सामना दूसरे वह नीचे दर्जे का आदमी ठहरा, क्या ठीक कोई बदतमीजी कर बैठे तो सरे बाजार बिना वजह अपनी बनी-बनाई इज्जत में बट्टा लगे। बेहतर यही था कि इस चौराहे पर पहुँच कर दूसरी राह ली जाय और यों इससे छुटकारा हो।

'खैर, बनी इसराइल और मूसा का जिक्र मैं फिर कभी तुमसे तफसील से करूँगा। इस वक्त तो जरा मुझे इधर काम से जाना है सलाम मियाँ जुम्मन।' यह कह कर मुंशी जी कैसरबाग सिनेमा की तरफ मुड़े। मुंशी जी को यों तेज कदम जाते देख कर पहले तो जुम्मन एक क्षण के लिए अपनी जगह पर खड़ा का खड़ा रह गया, उसकी समझ में नहीं आता था कि वह करे तो क्या करे। उसकी पेशानी पर पसीने के कतरे चमक रहे थे। उसकी आँखें बिना किसी मकसद के इधर-उधर मुड़तीं। बिजली की तेज रौशनी, फव्वारा, सिनेमा के पोस्टर, होटल, दुकानें, मोटर, ताँगे, इक्के और सबके ऊपर तारीक आसमान और झिलमिलाते हुए सितारे। गरज खुदा की सारी बस्ती।

दूसरे ही क्षण जुम्मन मुंशी जी की तरफ लपका। उस वक्त वह सिनेमा के पोस्टर देख रहे थे और बहुत खुश थे कि जुम्मन से जान छूटी।

जुम्मन ने उनके करीब पहुँच कर कहा, 'मुंशी जी!'

मुंशी जी का कलेजा धक से हो गया। सारी मजहबी गुफ्तगू, सारी कयामत की बातें, सब बेकार गई। मुंशी जी ने जुम्मन को कोई जवाब नहीं दिया।

जुम्मन ने कहा, 'मुंशी जी, अगर आप इस वक्त मुझे एक रुपया कर्ज दे सकते तो मैं हमेशा...'

मुंशी जी मुड़े, 'मियाँ जुम्मन, मैं जानता हूँ कि तुम इस वक्त तंगी में हो, मगर तुम तो खुद जानते हो मेरा अपना क्या हाल है। रुपया तो रुपया एक पैसा तक मैं तुम्हें नहीं दे सकता। अगर मेरे पास होता तो भला तुमसे छिपाना थोड़े था। तुम्हारे कहने की भी जरूरत न होती। पहले ही जो कुछ होता तुम्हें दे देता।'

बावजूद इसके जुम्मन ने विनती शुरू की, 'मुंशी जी, कसम ले लीजिए, जरूर आपको तनख्वाह मिलते ही वापस कर दूँगा। सच कहता हूँ, हुजूर इस वक्त कोई मेरी मदद करने वाला नहीं...'

मुंशी जी इस झिक-झिक से बहुत घबड़ाते थे। इंकार चाहे सच्चा ही क्यों न हो, बहुत कष्टदायक होता है। इसी वजह से वह शुरू से चाहते थे कि यहाँ तक नौबत ही न आए।

इतने में सिनेमा खत्म हुआ और तमाशाई अंदर से निकले।

'अरे मियाँ बरकत, भई तुम कहाँ?' किसी ने पास से पुकारा। मुंशी जी जुम्मन की तरफ से उधर मुड़े। एक साहब मोटे-ताजे तीस पैंतीस बरस के, अंगरखा औ दो-पल्ली टोपी पहने, पान खाए सिगरेट पीते हुए मुंशी जी के सामने खड़े थे। मुंशी जी ने कहा, 'ओहो, तुम हो! सालों बाद मुलाकात हुई। तुमने लखनऊ तो छोड़ ही दिया। मगर भाई क्या मालूम आते भी होगे तो हम गरीबों से क्यों मिलने लगे?' वह मुंशी जी के पुराने कालेज के साथी थे। रुपए-पैसे वाले, रईस आदमी। वह बोले, 'खैर, यह सब बातें तो छोड़ो। मैं दो दिन के लिए यहाँ आया हूँ। जरा लखनऊ में तफरीह के लिए। चलो इस वक्त में साथ चलो, तुम्हें वो मुजरा सुनवाऊँ कि उम्र-भर याद करो। मेरी मोटर मौजूद है। अब ज्यादा मत सोचो, चले चलो। सुना है तुमने कभी नूरजहाँ का गाना? आ-हा-हा, क्या गाती है, क्या बताती है, क्या नाचती है! वह अदा, वह फन, उसकी कमर की लचक, उसके पाँव के घुँघरू की झंकार, मेरे मकान पर, खुले सहन में, तारों की छाँव में, महफिल होगी। भैरवी सुन कर जलसा बर्खास्त होगा। बस, अब ज्यादा मत सोचो, चले ही चलो। कल इतवार है... बीवी-बेगम की जूतियों का डर है। अगर ऐसे ही औरत की गुलामी करनी थी तो शादी क्यों की? चलो भी मियाँ, मजा रहेगा। रूठी बेगम को मनाने में भी तो मजा है...'

पुराना दोस्त, मोटर की सवारी, गाना-नाच, जन्नत, निगाह, फिरदौस गोश, मुंशी जी लपक कर मोटर में सवार हो गए। जुम्मन की तरफ उनका ध्यान भी न गया। जब मोटर चलने लगी तो उन्होंने देखा कि वह उसी तरह चुप खड़ा है।

दुलारी

- सज्जाद ज़हीर

गोकि बचपन से वह इस घर में रही-पली, मगर सोलहवें-सतरहवें बरस में थी कि आखिरकार लौंडी भाग गई। उसके माँ-बाप का पता नहीं था, उसकी सारी दुनिया यही घर था और इसके घर वाले शेख नाजिम अली साहब खुशहाल आदमी थे। घराने में अल्लाह की मेहरबानी से कई बेटे और बेटियाँ भी थीं। बेगम साहिबा भी जिंदा थीं और जनाने में उनका पूरा राज था। दुलारी खास उनकी लौंडी थी। घर में और नौकरानियाँ और मामाएँ आतीं, महीना-दो महीना, साल-दो साल काम करतीं, उसके बाद जरा-सी बात पर झगड़ कर नौकरी छोड़ देतीं और चली जातीं। मगर दुलारी के लिए हमेशा एक ही ठिकाना था। उससे घर वाले काफी मेहरबानी से पेश आते। ऊँचे दर्जे के लोग हमेशा अपने से नीचे तबके वालों का ख्याल रखते हैं। दुलारी को खाने और कपड़े की शिकायत न थी। दूसरी नौकरानियों के मुकाबले में उसकी हालत अच्छी न थी। मगर बावजूद इसके कभी-कभी जब किसी मामा से उसका झगड़ा होता तो वह हमेशा यह कटाक्ष सुनती, 'मैं तेरी तरह कोई लौंडी थोड़ी हूँ।' इसका दुलारी के पास कोई जवाब नहीं होता।

उसका बचपन बेफिक्री में गुजरा। उसका रुतबा घर की बीवियों से तो क्या नौकरानियों से नीचे था। वह पैदा ही इस वर्ग में हुई थी। यह सब तो खुदा का किया-धरा है। वही जिसे चाहता है इज्जत देता है, जिसे चाहता है जलील करता है। उसका रोना क्या? दुलारी को अपनी पस्ती की कोई शिकायत नहीं थी। मगर जब उसकी उम्र का वह जमाना आया जब लड़कपन की समाप्ति और जवानी की आमद होती, और दिल की गहरी और अँधेरी बेचैनियाँ जिंदगी को कभी तल्ख और कभी मीठी बनाती हैं, तो वह अक्सर रंजीदा-सी रहने लगी। लेकिन यह एक अंदरूनी कैफियत थी, जिसकी उसे न तो वजह मालूम थी और न दवा। छोटी साहबजादी और दुलारी करीब-करीब एक उम्र की थीं और साथ खेलती थीं। मगर ज्यों-ज्यों उनकी वय बढ़ती थी, त्यों-त्यों दोनों के बीच फासला ज्यादा होता जाता। साहबजादी क्योंकि शरीफ थीं, उनका वक्त पढ़ने-लिखने सीने-पिरोने में खर्च होने लगा। दुलारी कमरों की धूल साफ करती, जूठे बर्तन धोती, घड़ों में पानी भरती। वह खूबसूरत थी, खुला हुआ चेहरा, लंबे-लंबे हाथ-पैर, भरा जिस्म। मगर आमतौर पर उसके कपड़े मैले कुचैले होते और उसके बदन से बू आती। त्यौहार के दिनों में अलबत्ता वह अपने रखाऊ कपड़े निकाल कर पहनती और सिंगार करती थी। अगर कभी भूले-भटके उसे बेगम साहेबा या साहबजादियों के साथ कहीं जाना होता तब भी उसे साफ कपड़े पहनने होते।

शबबरात थी। दुलारी गुड़िया बनी थी। औरतों वाले घर के आँगन में आतशबाजी छूट रही थी। सब घर वाले, नौकर-चाकर खड़े तमाशा देखते। बच्चे शोर मचा रहे थे। बड़े साहबजादे काजिम भी मौजूद थे जिनका सिन बीस-इक्कीस बरस का था। यह अपने कालेज की शिक्षा खत्म ही करने वाले थे। बेगम साहब उन्हें बहुत चाहती थीं। मगर वह हमेशा घर वालों से बेजार रहते और उन्हें तंगनजर व जाहिल समझते। जब वह छुट्टियों में घर आते तो उनकी छुट्टियाँ बहस करते ही गुजर जातीं। वह अक्सर पुरानी रस्मों के खिलाफ थे। मगर इनसे नाराजगी जाहिर करके सब कुछ बर्दाश्त कर लेते। इससे ज्यादा कुछ करने को तैयार नहीं थे।

उन्हें प्यास लगी और उन्होंने अपनी माँ के कंधे पर सिर रख कर कहा, 'अम्मी जान, प्यास लगी है।' बेगम साहब ने मोहब्बत-भरे लहजे में जवाब दिया, 'बेटा शर्बत पियो, मैं अभी बनवाती हूँ।' और यह कह कर दुलारी को पुकार कर कहा शर्बत तैयार करे।

काजिम बोले, 'जी नहीं, अम्मी जान, उसे तमाशा देखने दीजिए, मैं खुद जा कर पानी पी लूँगा।' मगर दुलारी हुक्म मिलते ही अंदर की तरफ चल दी थी। काजिम भी पीछे-पीछे दौड़े। दुलारी एक तंग अँधेरी कोठरी में शर्बत की बोतल चुन रही थी। काजिम भी वहीं पहुँच कर रुके। दुलारी ने मुड़ कर पूछा, 'आपके लिए कौन-सा शर्बत तैयार करूँ?' मगर उसे कोई जवाब नहीं मिला। काजिम ने दुलारी को आँख भर कर देखा। दुलारी का सारा जिस्म थरथराने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने एक बोतल उठा ली और दरवाजे की तरफ बढ़ी। काजिम ने बढ़ कर बोतल उसके हाथ से ले कर अलग रख दी और उसे गले से लगा लिया। लड़की ने आँखे बंद कर लीं और अपना तन-मन उसकी गोद में दिया।

दो हस्तियों ने, जिनके मानसिक जीवन में जमीन-आसमान का फर्क था यकायक यह महसूस किया कि उनकी आकांक्षाओं को किनारा मिल गया है। दरअस्ल वो तिनकों की मानिंद काली ताकतों के समंदर में बहे चले जा रहे थे।

एक साल गुजर गया। काजिम की शादी ठहर गई। शादी के दिन आ गए। चार-पाँच दिन के अंदर घर में दुल्हन आ जाएगी। घर में मेहमानों का हुजूम है, एक जश्न है, बहुत सारे काम हैं। दुलारी एक दिन रात को गायब हो गई। बहुत छान-बीन हुई, पुलिस को सूचना दी गई, मगर कहीं पता न चला। एक नौकर पर सबको शक था। लोक कहते थे उसी की मदद से दुलारी भागी और वही उसे छिपाए हुए है। वह नौकर निकाल दिया गया। वास्तव में दुलारी उसी के पास निकली मगर उसने वापस जाने से साफ इंकार कर दिया।

तीन-चार महीने बाद शेख नाजिम अली साहब के एक बूढ़े नौकर ने दुलारी को शहर के ऐसे मोहल्ले में देखा, जहाँ गरीब रंडियों का बसेरा था। बुढ्ढा बेचारा बचपन से दुलारी को जानता था। वह उसके पास गया और घंटों दुलारी को समझाया कि वापस चले। वह राजी हो गई। बुड्ढा समझता था कि उसे इनाम मिलेगा और यह लड़की मुसीबत से बचेगी।

दुलारी की वापसी ने सारे घर में खलबली डाल दी। वह गर्दन झुकाए, सिर से पैर तक एक सफेद चादर ओढ़े, परेशान सूरत, अंदर दाखिल हुई और दालान के कोने में जा कर जमीन पर बैठ गई। पहले तो नौकरानियाँ आईं। वो दूर से खड़े हो कर उसे देखती और अफसोस करके चली जातीं। इतने में नाजिम अली साहब जनाने में तशरीफ लाए। उन्हें जब मालूम हुआ कि दुलारी वापस आ गई है तो वह बाहर निकले, जहाँ दुलारी बैठी थी। वह काम-काजी आदमी थे, घर के मामलों में बहुत कम हिस्सा लेते थे। उन्हें भला इन जरा-जरा सी बातों की कहाँ फुर्सत थी। दुलारी को दूर से पुकार कर कहा, 'बेवकूफ, अब ऐसी हरकत मत करना' और यह फरमा कर अपने काम पर चले गए। इसके बाद छोटी साहबजादी दबे कदम अंदर से बाहर आईं और दुलारी के पास पहुँची, मगर बहुत करीब नहीं। इस वक्त वहाँ कोई और न था। वह दुलारी के साथ खेली हुई थीं। दुलारी के भागने का उन्हें बहुत अफसोस था। शरीफ, पवित्र

बाइस्मत हसीना बेगम को उस गरीब बेचारी पर बहुत तरस आ रहा था। मगर उनकी समझ में न आता था कि कोई लड़की कैसे ऐसे घर का सहारा छोड़ कर जहाँ उसकी सारी जिंदगी बसर हुई हो, बाहर कदम तक रख सकती है। ओर फिर नतीजा क्या हुआ? इस्मत फरोशी (देह व्यापार), गुर्बत जिल्लत। यह सच है कि वह लौंडी थी, मगर भागने से उसकी हालत बेहतर कैसे हुई? दुलारी गर्दन झुकाए बैठी थी। हसीना बेगम ने सोचा कि वह अपने किए पर शर्मिंदा है। उस घर से भागना, जिसमें वह पली, एहसान फरामोशी थी। मगर उसकी इसे खूब सजा मिल गई। खुदा भी गुनाहगारों की तौबा कुबूल कर लेता है। गो कि उसकी आबरू खाक में मिल गई। मगर एक लौंडी के लिए यह उतनी अहम चीज नहीं जितनी कि शरीफजादी के लिए। किसी नौकर से उसकी शादी कर दी जाएगी। सब फिर से ठीक हो जाएगा। उन्होंने आहिस्ता से नर्म लहजे में कहा, 'दुलारी, यह तूने क्या किया?' दुलारी ने गर्दन उठाई, डबडबाई आँखों से एक पल के लिए अपने बचपन की हमजोली को देखा और फिर उस तरफ से सिर झुका लिया।

हसीना बेगम वापस जा रही थीं कि खुद बेगम साहब आ गईं। उनके चेहरे पर जीत की मुस्कुराहट थी। वह दुलारी के एकदम पास आ कर खड़ी हो गईं। दुलारी उसी तरह चुप, गर्दन झुकाए बैठी रही। बेगम साहब ने डाँटना शुरू किया, 'बेहया, आखिर जहाँ से गई थी, वहीं वापस आई न, मगर मुँह काला करके। सारा जमाना तुझ पर थू-थू करता है। बुरे काम का यही अंजाम है...'

लेकिन बावजूद इन सब बातों के बेगम साहब उसके लौट आने से खुश थीं। जब से दुलारी भागी थी, घर का काम उतनी अच्छी तरह नहीं होता था।

इस लानत-मलामत का तमाशा देखने सब घर वाले बेगम साहब और दुलारी के चारों तरफ खड़े हो गए थे। एक गंदी नाचीज हस्ती को इस तरह जलील होता देख कर सबके सब अपनी बड़ाई और बेहतरी महसूस कर रहे थे। मुर्दाखाने वाले गिद्ध भला कब समझते हैं कि जिस लाचार जिस्म पर वह अपनी नुकीली चोंचें मारते हैं, बेजान होने के बावजूद भी उनके ऐसे जिंदों से बेहतर है।

यकायक बगल के कमरे से काजिम अपनी खूबसूरत दुल्हन के साथ निकले और अपनी माँ की तरफ बढ़े। उन्होंने दुलारी पर नजर नहीं डाली। उनके चेहरे पर गुस्सा साफ नजर आ रहा था। उन्होंने अपनी माँ से तीखे लहजे में कहा, ‘अम्मी, खुदा के लिए इस बदनसीब को अकेली छोड़ दीजिए। यह काफी सजा पा चुकी है। आप देखतीं नहीं कि उसकी हालत क्या हो रही है।'

लड़की इस आवाज को सुनने की ताब न ला सकी। उसकी आँखों के सामने वे सारे मंजर घूम गए जब वह और काजिम रातों की तन्हाई में यकजा होते थे। जब उसके कान प्यार के लफ्ज सुनने के आदी थे। काजिम की शादी उसके सीने में नश्तर चुभाती थी। इसी चुभन और इसी बेदिली ने उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया और अब यह हालत है कि वह भी यों बातें करने लगे। इस रूहानी कोफ्त ने दुलारी को उस वक्त नारी स्वाभिमान की मूर्ति बना दिया। वह उठ खड़ी हुई और उसने सारे गिरोह पर एक ऐसी नजर डाली कि एक-एक करके सबने हटना शुरू किया। मगर यह एक जख्मी कटे परोंवाली चिड़िया की उड़ान की आखिरी कोशिश थी। उस दिन रात को वह फिर गायब हो गई।

फिर यह हंगामा...

- सज्जाद ज़हीर

'मजहब दरअस्ल बड़ी चीज है। तकलीफ में, मुसीबत में, नाकामी के मौके पर जब हमारी अक्ल काम नहीं करती और हमारे होश गायब होने को होते हैं, जब हम एक जख्मी जानवर की तरह चारों तरफ डरी हुई, लाचार नजरें दौड़ाते हैं, उस वक्त वह कौन-सी ताकत है जो हमारे डूबते हुए दिल को सहारा देती है? मजहब। और मजहब की जड़ ईमान है। खौफ और ईमान। मजहब की व्याख्या लफ्जों में नहीं की जा सकती। उसे हम बुद्धि के जोर से नहीं समझ सकते। यह एक अंदुरूनी कैफियत है...'

'क्या कहा? अंदुरूनी कैफियत?'

'यह कोई हँसने की बात नहीं, मजहब एक आसमानी रौशनी है जिसके उजाले में हम सृष्टि का सौंदर्य देखते हैं। यह एक अंदुरूनी...'

'खुदा के वास्ते कुछ और बातें कीजिए, आपको इस वक्त मेरी अंदुरूनी कैफियत का अंदाजा नहीं मालूम होता। मेरे पेट में सख्त दर्द हो रहा है। इस वक्त मुझे आसमानी रौशनी की बिलकुल जरूरत नहीं। मुझे जुल्लाब...'

एक बार रात को मैं नावेल पढ़ने में डूबा था कि चुपके से कोई मेरे कमरे में दाखिल हुआ और मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया। मैंने जो आँखे उठाई तो क्या देखा कि मियाँ 'इब्लीस' (शैतान, जिसे बुराई की ओर उन्मुख करने वाली शक्ति माना जाता है) खड़े हैं।

मैंने कहा, 'इब्लीस साहब, इस वक्त आखिर आपकी मुराद मेरे यहाँ आने से क्या है?' मैं एक बहुत दिलचस्प नाविल पढ़ने में व्यस्त हूँ। बिला वजह आप फिर चाहते हैं कि मैं किताब बंद करके आपसे मजहबी बहस शुरू करूँ। मेरे नजदीक नाविल पढ़ना मजहबी बातों में सिर खपाने से कहीं बेहतर है। आपने जो मेरे दिल में संशय पैदा करने की कोशिश की है, मैं हर्गिज उसका शिकार नहीं होना चाहता।

मेरे इस कहने पर वह इब्लीस नुमा शख्स मुड़ा और कमरे के बाहर जाने लगा। इस तरह एक फरिशते के साथ बर्ताव करने पर मेरा दिल मुझे कुछ-कुछ मलामत करने लगा ही था कि वह शख्स यकबारगी मेरी तरफ पलटा और दुख-भरी आवाज में मुझसे कहा, 'मैं इब्लीस नहीं, जिबरईल हूँ। मैं तुम पर इसका इल्जाम नहीं रखना चाहता कि तुम मुझे इब्लीस समझे। इब्लीस भी आखिर मेरे ही जैसा एक फरिश्ता है। तुम तो क्या, तुमसे बड़े लोगों ने अक्सर मुझे इब्लीस समझ कर घर से निकाल दिया। पैगंबरों तक से यह गलती हो चुकी है। बात यह है कि मैं अच्छाई का फरिश्ता हूँ। मेरी सूरत से पवित्रता टपकती है। अगर इब्लीस की तरह मैं हसीन होता तो शायद लोग मुझसे इस तरह का बर्ताव नहीं करते। और भला आप यह कैसे समझे कि मैं आपसे मजहबी बहस करना चाहता हूँ? मुझे बहस से कोई सरोकार नहीं। हर बहस क्योंकि बुद्धि और तर्क पर आधारित होती है, इसलिए वह शैतानी चीज है। मजहब की जड़

मजबूत है तो फिर खुदा खुद मजहबी बहस में तुम्हारा साथ देता है और जब खुदा की मदद शामिल हो तो फिर अकिल से क्या वास्ता? मजहब दरअसल बड़ी अच्छी चीज है...'

अक्ल और ईमान, आसमान और जमीन, इंसान और फरिश्ता, खुदा और शैतान, मैं क्या सोच रहा हूँ? सूखी हुई खुश्क जमीन बरसात में बारिश से सैलाब हो जाती है और उसमें से अजब तरह की खुशगवार सोंधी खुश्बू आने लगती है। कहत (अकाल) में लोग भूखे मरते हैं। बूढ़े, बच्चे, जवान, मर्द, औरत आँखों में हल्के पड़े हुए, चेहरे जर्द, हड्डियाँ पसलियाँ मालूम होता है कि झुर्री पड़ी हुई खाल को चीर कर बाहर निकली पड़ रही है। भूख की तकलीफ, हैजे की बीमारी, कै, दस्त, मक्खियाँ, मौत, कोई लाशों को गाड़ने या जलाने वाला नहीं। लाशें सड़ती हैं और उनमें से अजब तरह की बदबू आने लगती है।

एक रईस के यहाँ विलायती कुत्ता पला था। उसका नाम था। शेरा। उसके लिए रोजाना रातिब (खुराक) मुकर्रर था और वह आमतौर पर घर के अहाते में ही रहा करता था। कभी-कभी बाजारू कुतियों के पीछे अलबत्ता भागता था। जब बड़ा हुआ तब उसकी यह आदत भी बढ़ी। मोहल्ले में और जो दुबले-पतले बाजारू कुत्ते थे वो शेरा को आता हुआ देखते तो अपनी कुतियों को छोड़ कर भाग जाते और दूर से खड़े हो कर शेरा पर भौंकते। शेरा कुतियों के साथ रहता और उन कुत्तों की तरफ रूख भी न करता।

थोड़े दिनों के बाद संयोग ऐसा हुआ कि शेरा से बड़ा भारी औ दूने जिस्म वाला एक बाजारू कुत्ता उस मुहल्ले में आ गया और वह शेरा से लड़ने पर आमदा हो गया। दो-एक दफा शेरा से उसकी झड़प भी हुई। ऐसे मौके पर कुतियाँ तो सब भाग जातीं और सारे बाजारू कुत्ते अपने गिरोह के नेता के साथ मिल कर शेरा पर हमला करते। धीरे-धीरे शेरा का अपने घर से बाहर निकलना ही न सिर्फ बंद हो गया बल्कि बाजारू कुत्तों का गिरोह शेरा पर हमला करने के लिए उसके अहाते में आने लगा। जब इस तरह का हमला होता तो घर में कुत्तों के भौंकने की वजह से कान पड़ी आवाज न सुनाई देती। नौकर वगैरा जो करीब होते वो शेरा को छुड़ाने के लिए लपकते और बड़ी-बड़ी मुश्किलों से शेरा को उसके दुश्मनों से बचाते। शेरा कई-कई दफा जख्मी हुआ और अब घर के अंदर छिपा बैठा रहता। बाजारू कुत्तों की पूरी फतह हो गई।

एक दिन एकदम सुबह शेरा अपने घर के हाते में फिर रहा था कि बाहर वाले कुत्तों के गिरोह ने बड़े कुत्ते की अगुवाई में उस पर हमला किया। घर में सब सो रहे थे। मगर गुल और शोर इतना हुआ कि लोग जाग उठे। रईस साहब जिनका कुत्ता था, अंदर से बाहर निकल पड़े और इस हंगामे को देखकर अपनी बंदूक उठा लाए। उन्होंने बड़े बाजारू कुत्ते पर निशाना लगा कर फायर किया और उसका वहीं खात्मा हो गया। बाकी कुत्ते भाग गए। शेरा जख्मों से चूर, अपने मालिक के कदमों पर लोटने लगा। कमीने, नीच बाजारू कुत्तों की कमर टूट गई। शरीफ, खानदानी विलायती कुत्ता सलामत रह गया और फिर उसी तरह मजे करने लगा।

इंसानियत किसे कहते हैं?

गोमती हजारों बरस से यों ही बहती चली जा रही है। सैलाब आते हैं, आस-पास की आबादी को मिटा कर दरिया फिर उसी रंग से आहिस्ता-आहिस्ता बहने लगता है। दरिया के किनारे एक जगह एक छोटा-सा मंदिर है। इस मंदिर की नींव मालूम होता है, बालू पे थी। बालू को दरिया के धारे ने काट दिया। मंदिर का एक हिस्सा झुक गया। अब मंदिर तिरछा हो गया। मगर अभी तक कायम है। थोड़े दिन के बाद बिल्कुल गिर जाएगा। थोड़े दिन तक खंडहर का निशाना रहेगा। इसके बाद जहाँ पहले मंदिर था, वहाँ से दरिया बहने लगेगा।

आज त्यौहार है, नहान का दिन है। सुबह सबेरे से नदी के किनारे के मंदिरों और घाटों पर भीड़ है। लोग मंत्र पढ़ते हैं और डुबकियाँ लेते जाते हैं। दरिया का पानी गंदा मालूम होता है। लहरों पर गेंदे और गुलाब के फूलों की पंखुड़ियाँ, ऊपर-नीचे होती हुई, बहती चली जा रही हैं। कहीं कहीं किनारों पर जा कर बहुत-से फूल-पत्तियाँ, छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े, पिए हुए सिगरेट, औरतों के कपड़ों से गिरी हुई चमकियाँ, मुर्दा मछली और इसी किस्म की दूसरी चीजें, इकट्ठे हो कर रुक गई हैं।

गोमती नदी, शेरा कुत्ता, मुर्दा मछली, आसमान पर बहते हुए बादल और जमीन पर सड़ती हुई लाश, इन सब पर खुदा अपनी रहमत का साया किए हुए है।

कल्लू मेहतर के जवान लड़के को साँप ने डस लिया। बरसात का मौसम था, वह सहन में जमीन पर सो रहा था। सुबह होते हुए, उसकी बाईं कोहनी के करीब साँप ने काटा, उसको खबर तक नहीं हुई। पाँच बजे सुबह वह उठा तो बाजू पर उसने निशान देखे, कुछ तकलीफ महसूस की। अपनी माँ को उसने ये निशान दिखाए और ये ख्याल करके कि किसी कीड़े-मकोड़े के काटने के निशान हैं, वह झाड़ू देने में मशगूल हो गया। कल्लू मेहतर और उसके सारे बीवी-बच्चे एक घर में नौकर थे। पंद्रह रुपया महीना उनकी पगार थी। रहने के लिए नौकरों के लिए बनी एक कोठरी थी, जिसमें कल्लू, उसकी बीवी, उसकी दो लड़कियाँ और उसका लड़का सबके सब रहते थे। पंद्रह रुपया महीना, एक कोठरी और कभी-कभी बचा हुआ जूठा खाना और फटे-पुराने कपड़े, कल्लू को जिन साहब के यहाँ से सब मिलता था उनको वह खुदा से कम नहीं समझता था। कल्लू का लड़का दस-पंद्रह मिनट से ज्यादा काम न कर सका। उसका सर घूमने लगा और उसके बदन भर में सरसराहट महसूस होने लगी। छह बजते-बजते वह पलँग पर गिर कर एड़ियाँ रगड़ने लगा। उसके मुँह से फेन निकलने लगा, उसकी आँखे पथरा गईं। जहर उसकी रगों और खून में घुल चुका था और मौत ने उसे अपने निर्मम शिकंजे में जकड़ लिया। उसके माँ-बाप ने रोना शुरू किया। सारे घर में खबर मशहूर हो गई कि कल्लू के लड़के को साँप ने डस लिया है। सबने दवा और इलाज का सुझाव दिया।

कल्लू के मालिक के साहबजादे बहुत ज्यादा गरीबों का ख्याल रखने वाले और रहमदिल थे। वह खुद कल्लू की कोठरी तक आए और कल्लू के लड़के को हाथ से छुआ और दवा पिलाई। मगर कल्लू की अँधेरी कोठरी इतनी ज्यादा गंदी थी और उसमें इतनी बदबू थी कि साहबजादे से चार पाँच मिनट भी न ठहरा गया। रहमदिली और गरीब परवरी की आखिर एक हद होती है। वह वापस तशरीफ ला कर अच्छी तरह नहाए, कपड़े बदल कर रूमाल में इत्र लगा कर सूँघा तब जा कर उनकी तबियत दुरुस्त हुई। रहा कल्लू का लड़का, वह बदनसीब एक बजे के करीब मर गया। उसकी कोठरी से रोने-पीटने की आवाजें रात तक आती रहीं, जिसकी वजह से सारे घर में उदासी छा गई। कफन-दफन के लिए कल्लू ने दस रुपए पेशगी लिए। रात को आठ-नौ बजे के करीब कल्लू के लड़के की लाश उठ गई।

हामिद साहब अपनी रिश्ते की बहन सुल्ताना पर आशिक थे। हामिद साहब ने सुल्ताना को सिर्फ दूर से देखा है। एक-दो लफ्जों के इलावा कभी आपस में देर तक बातें नहीं हुई। मगर इश्क की बिजलियों के लिए लफ्जों की, गुफ्तगू की, जान-पहचान की क्या जरूरत? हामिद साहब दिल ही दिल में जला करते, झूम-झूम कर शेर पढ़ते और कभी-कभी जब इश्क की शिद्दत होती तो गजल लिख डालते और रात को दरिया के किनारे जा कर चुप बैठते और ठंडी साँसे भरते। उनके सिर्फ दो गहरे दोस्त उनके इश्क का राज जानते थे। इस तरह अपने दिल की आग छिपाने पर वो हामिद की तारीफ किया करते थे। शरीफों का यही दस्तूर था -

देखना भी उन्हें तो दूर से देखा करना

शेवा-ए-इश्क नहीं हुस्न को रुस्वा करना

हामिद हफ्ते में एक बार से ज्यादा शायद ही अपने चचा के घर जाते रहे हों। मगर जाने के एक दिन पहले से उनकी बेचैनी की इंतहा न रहती। शायर ने ठीक कहा है कि मिलने का वायदा जैसे-जैसे नजदीक आता जाता है, देखने का शौक वैसे-वैसे तेज होता जाता है।

उनके दोस्त जब हामिद की यह कैफियत देखते तो यह शेर पढ़ते -

इश्क पर जोर नहीं, है यह वह आतिश गालिब
कि लगाए न लगे और बुझाए न बुझे

हामिद साहब शर्माते, हँसते, खफा होते, घबड़ाते, दिल पर हाथ रखते और अपने दोस्तों से विनती करते कि उन्हें छेड़ें मत।

सुल्तान बेगम शरीफजादी ठहरीं। इश्क या मोहब्बत के शब्द इज्जतदार बहू-बेटियों की जबान तक आना मुनासिब नहीं। उन्होंने अपने हामिद भाई से आँख मिला कर शायद ही कभी बात की हो। मगर जब वह हामिद भाई को अपने सामने घबड़ाते और झेंपते देखतीं तो दिल ही दिल में सोचती थीं कि शायद इश्क इसी चीज का नाम है। हामिद बेचारे को पाक मोहब्बत थी इसलिए अगर कभी सुल्ताना और वह अकेले कमरे में रह भी जाते तो सिवाए इसके कि वह डरते-डरते बहुत दबी हुई ठंडी साँस लेते, वे किसी 'नाजायज' तरीके से इश्क का इजहार नहीं करते। एक मुद्दत तक इश्क का यह सिलसिला यों ही जारी रहा।

जब हामिद साहब की नौकरी हो गई तो उनके दिल में शादी का ख्याल आया। उनके माँ-बाप को भी इसकी फिक्र हुई। सुल्ताना बेगम की अम्मी भी अपनी बच्ची के लिए वर की तलाश में थीं। हामिद साहब ने बड़ी मुश्किल से अपनी माँ को इस बात से आगाह करवा दिया कि वह सुल्ताना बेगम से शादी करना चाहते हैं।

शादी का पयाम भेजा गया। मगर सुल्ताना बेगम की वाल्दा को हामिद मियाँ की अम्मी की सूरत से नफरत थी। हमेशा इन दोनों खातूनों में अदावत और दुश्मनी थी। हामिद मियाँ की अम्मी अगर अच्छे से अच्छा कपड़ा और जेवर भी पहने होतीं तो भी सुल्ताना बेगम की माँ, उन पर कोई-न-कोई ताना जरूर मारतीं और उनके लिबास में

कुछ-न-कुछ ऐब जरूर निकालतीं। अगर एक के पास कोई जेवर होता जो दूसरी के पास न होता तो दूसरी बेगम जरूर अगली मुलाकात के मौके पर उससे बेहतर उसी किस्म का जेवर पहने होतीं। एक घर से निकाल दी गई मामा को दूसरे घर में जरूर नौकरी मिलती।

हामिद मियाँ के घर से जब शादी का पयाम आया तो सुल्ताना बेगम की वाल्दा ने हँस कर बात टाल दी। उन्होंने कोई साफ जवाब नहीं दिया। वह चारों तरफ नजर दौड़ा रही थीं और चाहती थीं कि पहले सुल्ताना बेगम के लिए कोई वर ढूँढ़ लें तब हामिद मियाँ की निस्बत से साफ-साफ इंकार करें। हामिद मियाँ की माँ इन तरकीबों को खूब समझती थीं, उनके गुस्से की कोई इंतहा न थी। जब खानदान में अच्छा-खासा, सही-सालिम कमाता खाता, सआदतमंद लड़का मौजूद हो तो सुल्ताना की घर से बाहर शादी करने के क्या मानी। मगर हामिद पर इश्क सवार था, उन्होंने अपने वाल्दा से कहा कोशिश किए जाएँ। यों ही एक मुद्दत गुजर गई। कुछ खुदा का करना ऐसा हुआ कि सुल्ताना बेगम की वाल्दा को अपनी बेटी के लिए कोई मुनासिब वर न मिला। सुल्ताना बेगम की उम्र उन्नीस बरस की हो गई। उसकी वाल्दा अब ज्यादा इंतजार न कर सकीं, आखिरकार वह रजामंद हो गईं।

हामिद मियाँ की सुल्ताना बेगम से शादी हो गई। उनकी शादी हुए दो साल से कुछ ज्यादा हो गए। आशिक की मुराद पूरी हुई। खुदा के फजल से दो बच्चे भी हैं।

एक गरीब औरत एक तारीक अँधेरी कोठरी में एक टूटी हुई झिलंगी चारपाई पर पड़ी कराह रही है। दर्द की तकलीफ इतनी है कि साँस नहीं ली जाती। रात का वक्त है और सर्दी का मौसम। औरत के बच्चा होने वाला है।

एक अँधेरी रात में एक गरीब औरत सबसे छिपा कर चुपके से अपने गरीब आशिक से मिलने गई। उस औरत को जब भी मौका मिलता वह उस मर्द से मिलने जाती।

इश्क की लज्जत, मौत की तकलीफ - यह पहाड़ जिनकी चोटियाँ नीले आसमान से जा कर टकराती हैं, क्यों खड़े हैं। समंदर की लहरें।

घड़ी की टिक-टिक और पानी के एक-एक कतरे के टपकने की आवाज खामोशी और दिल की धड़कन। मोहब्बत की एक घड़ी, रगों में खून के दौड़ने की आवाज सुनाई देती है, आँखें बातें करती हैं और सुनती हैं : सुअर, पाजी, उल्लू, हरामजादा... गालियाँ और सख्त तेज धूप जो खाल को मालूम होता है हड्डी तक पिघला देगी। एक जमींदार और उनका काश्तकार जिसके पास लगान देने के रुपए नहीं। साहबजादे ने वालिद को दूसरा खत भेजा है, जिसमें उनसे ताकीद के साथ रुपए माँगे हैं। वकालत के इम्तहान की फीस चार दिन के अंदर जानी जरूरी है। वालिद साहब अपने साहबजादे की पढ़ाई के लिए काश्तकार से रुपए वसूल कर रहे हैं।

चारों तरफ साँप रेंग रहे हैं। काले-काले, लंबे-लंबे, फन उठा-उठा कर झूम रहे हैं। इनको कौन मारे? किस चीज से मारे?

बरसात में बादल की गरज और पहाड़ों की तन्हाई में एक झरने के बहने की आवाज, लहलहाते हुए शादाब खेत और बंदूक के चलने की गरजदार सदा। इसके बाद एक जख्मी सारस की दर्दनाक काँय-काँय-काँय।

बादल नहीं आते

- अहमद अली

और बादल नहीं आते। निगोड़े बादल नहीं आते, गर्मी इस तड़ाखे की पड़ रही है कि अल्लाह-अल्लाह, तड़पती हुई मछली की तरह भुने जाते हैं। सूरज की गर्मी और धूप की तेजी। भाड़ भी क्या ऐसा गर्म होगा। पुरी दोजख है। कभी देखी भी है? नहीं देखी तो अब मजा चख लो। वह मुई चिलचिलाती हुई धूप है कि अपने होश में तो देखी नहीं। चील अंडा छोड़ती है। हिरन तो काले हो गए होंगे। भई कोई पंखे ही को तेज कर दो। सुकून तो हो जाता है।

खामोशी, खामोशी, सुस्ती और पस्ती, पस्ती और मस्ती। बचपन में सुनते थे कि हिमालय पर्वत के दामन में एक बड़ी गुफा है। ऊँचे आसमान से बातें करते हुए पहाड़। सख्त और घने। एक हिस्से में एक सूखी, बड़ी, चौड़ी और अँधेरी गुफा, उसके मुँह पर एक बड़ी चट्टान रखी रहती है। इस गुफा में बादल बंद रहते हैं। सफेद, भूरी और काली गाएँ बंद रहती हैं। कैसे-कैसे अहमक (मूर्खतापूर्ण) ख्यालात होते हैं। जहालत की भी कोई हद है। कितना ही समझाओ समझ में नहीं आता। एक ही लाठी से बैल और बकरियों को हाँकते हो। हम कोई कुत्ते हैं कि भौंके चले जाएँ? भें-भों-भों कोई सुनता तक नहीं। अक्ल पर पत्थर पड़ गए है। ऐ कोई तो बताओ कि अक्ल बड़ी या भैंस। भैंस बड़ी है भैंस। भैंस अक्ल की दुम में नमदा। ज्यादा कहो डंडा लेकर पिल पड़े। मौलवियों के भी कहीं अक्ल होती है? अक्ल-अक्ल, सूरत न शक्ल। भाड़ में से निकल। दाढ़ी ने दिल पर स्याही छा रखी है। दिमाग को इस्तेमाल नहीं करते। समझ को छप्प पर रख दिया। ताक में से किताब उतारी, हिल-हिल कर पढ़ रहे हैं, झुक-झुक कर पढ़ रहे हैं। वाह मियाँ मिट्ठू-खूब बोले। पढ़ो मियाँ मिट्ठू-पढ़ो हक अल्लाह-पाक जात अल्लाह, पाक नबी रसूल अल्लाह, नबी जी भेजो। या अल्लाह भेज। मौलवी साहब को बच्चे की तमन्ना है। सख्त आरजू है। न मालूम क्या गुनाह किया है जिसकी सजा मिल रही है। घबड़ाइए नहीं। दो तावीज देता हूँ। हकीर-फकीर, नाचीज ओ गुनाहगार हूँ। लेकिन कला में इलाही है। अल्लाह ने चाहा तो मुराद पूरी होगी। इशा (रात की नमाज) के बाद जहाँ कर सात बार दुरुद शरीफ पढ़ कर लोबान की धूनी के साथ सहवास के वक्त नाभि के नीचे बाँध दीजिएगा। दूसरा पानी में घोल कर एक सुराही या किसी बरतन में रख लीजिएगा और सात दिन आबे जम-जम (मक्का के एक पवित्र सोते का पानी) मिला कर निहार मुँह पी लीजिएगा। अगर खुदा ने चाहा तो मुराद जरूर बर आएगी! यह नजराना है।

लाहौल विला कूवत... तुमको शर्म नहीं आती! समझते हो कि अल्लाह का कलाम (शब्द) खरीदा जा सकता है? खुदा को भी मोल लोगे? मैं नजराना-वजराना नहीं लेता। जाओ किसी टूटपुँजिए के पास जाओ। भाग यहाँ से, निकल। हजरत सख्त कुसूर हुआ, माफी चाहता हूँ। आइंदा ऐसी गुस्ताखी न होगी। अच्छा खैर जा, लेकिन एक बात याद रखना-नौचंगदी जुमेरात (इस्लामी मास का पहला बृहस्पतिवार) को बड़े पीर साहब की नियाज दिलवा देना। सवा रुपया और पाव भर मोतिया के फूल हरे-भरे साहब के मजार पर चढ़ा देना। का-आ-री आजेब आ-आ आपकी दस्तारे मुबारक में खातन... का आ... आ मौलवी साहब खाई। हाँ बेटा खूब खाई। अजी मौलवी साहब खूब खाई। हाँ-हाँ बेटा खूब खाई। नहीं मोलवी साहब खाई, अबे कह तो दिया खाई, हाँ खूब खाई, आओ ब!! अंग्रेजों को खुदा गारत करे। अंग्रेजी पढ़ा-पढ़ा कर नास्तिक बना दिया, जनखा बना डाला। मर्दानगी की नाक काट कर ले गए, न दोजख का डर, न जन्नत की ख्वाहिश। पढ़ा-पढ़ाया सब खाक में मिला दिया। हमारा मजाक उड़ाते हैं, खुदा-ए-पाक पर हँसते हैं। जब आग में जलेंगे तो और एक साधू उस गुफा का मुँह बरसात में खोल देता है। बादल भड़-भड़ उड़ निकलते हैं। सुन-सुन सखी पंखी का बयाह होता था तातल ममूला नाचती थी... बुलबुल तो खूब बोला पोदना सताई... तीतरी

मंमेरी सको कि नाल तेरी... पर बिल्ली जो नाइन आई सारी सबा भगाई। भाड़-भाड़ सब बारात उड़ गई। अब तो हवा उखड़ गई। अब तो हवा उखड़ गई। हवा। अभी देखो क्या होता है। खुदा नेक हिदायद दे। सच है, कयामत के सब आसार मौजूद हैं। आग उगलता हुआ साँप। तफरके, झगड़े, लडाइयाँ, मजहब और खुदा की तौहीन। जमीन का तबका बदल रहा है। जब यूनान का तबका उल्टा था तो यही सब लक्षण मौजूद थे। या अल्लाह रहम कर। यह जाहिल हैं। यह नहीं समझते कि क्या कह रहे हैं। तू दुनियाँ का रब है। इनको माफ कर।

बादल क्यों नहीं आते? और जिंदगी बवाल है। बवाल। बाल लंबे-लंबे काले-काले बाल। एक फिजूल की लादी लदी हुई। आखिर हम भी मरदुवों की तरह क्यों नहीं कटवा सकते। छोटे-छोटे बालों से सर कैसा हल्का मालूम होता होगा। खुदा बख्शे, अब्बा जान के तो छोटे-छोटे थे। एक मरतबा ऐसी ही गर्मी पड़ी तो पान भी बनवा लिया था। मैंने और साबरा ने खूब सर सहलाया। काश कि हमारे बाल भी कटने होते। गुद्दी जली जाती है। झुलसी जाती है। उस पर भी बाल नहीं कटवा सकते। खानदान वालों की क्या बड़ी नाक है, हम जो बाल कटवा लेंगे तो उनकी नाक कट जाएगी। अगर मैं कहीं लड़का होती तो खोंडी छुरी से काट डालती, जड़ से उड़ा डालती। जब नाक ही न रहती तो कटने का डर कहाँ? खुदा गंजे को नाखून ही नहीं देता। जख्म के भरने तलक नाखून न बढ़ आएँगे क्या? जक्ष्म तो भर आया लेकिन नाखून ही नहीं। जो जख्म-जख्म, रहम-अलरहम...

... आखिर हम ही में रहम क्यों पैदा किया। औरत कमबख्त मारी की भी क्या जान है, चिचड़ी से बद्तर। काम करें-काल करें, सीना-पिरोना, खाना-पकाना, सुबह से रात तक जले पाँव की बिल्ली की तरह इधर-उधर फिरना। उस पर तुर्रा यह कि बच्चे जनना। जी चाहे या न चाहे, जब मियाँ मुए का जी चाहा हाथ पकड़ के खींच लिया। अधर आओ मेरी जानी, मेरी प्यारी। तुम्हारे नखरे में गर्म मसाला। देखो तो कमरे में कैसी ठंडक है, मेरे कलेजे की ठंडक, वरे आओ। हटो परे, तुम पर हर वक्त कमबख्त शैतान सवार रहता है न दिन देखो, न रात। हाय, मार डाला, कटारी मारो न। हाथ निगोड़ा मरोड़ डाला-तोड़ डाला, कहाँ भागी जाती हो? सीने चिमट के लेट जाओ। देखो कटारी का मजा चल लो। वही मुए दूधों पर हाथ चलने लगे। सख्त-सख्त उंगलियों से मसल डाला-वसल डाला। कमबख्त ने घुंडी को किस जोर से दबाया कि बिलबिला भी न सकी। मुआ जवाना मरे। कोठेवालियों के साथ भी कोई ऐसा बर्ताव न करता होगा। कमजोर जान लेट गई कि सारा गर्मी का गुस्सा मुझ ही पर उतरा। मुर्दे की तरह क्यों पड़ी हो? क्या जान नहीं, जोर लगाओ। प्यारी, प्यारी, ज...अ...आ...नी।

और हम हैं कि कुछ कर ही नहीं सकते। हम क्यों नहीं कुछ कर सकते? अगर अपना रुपया होता तो ये सब जिल्लत क्यों सहनी पड़ती। जिस वक्त जो जी चाहता करते। कमाने की इजाजत भी तो नहीं। पर्दे में पड़े-पड़े सड़ते हैं। लौंडियों (नौकरानियों) से बद्तर जिंदगी है। जानवरों से भी गए-गुजरे हुए पिंजरे में पड़े हैं, कैद किए पड़े हैं। पर होते हुए भी फड़फड़ाने की गुंजाइश नहीं। हमारी जिंदगी ही क्या है? बुझा दिया तो बुझ गए, जला दिया तो जल रहे हैं। हर वक्त जला करते हैं। जलने के अलावा और भी कुछ हमारी किस्मत में है? हुक्म की तामील करते जाएँ बस! मर्द मुए सारे में जूतियाँ चटखाते फिरते हैं। कहीं बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ाया, कहीं गप्पें कीं, कहीं गंजीफा (ताश), कहीं शतरंज, कहीं मुए ताश, रात को कुछ नहीं तो चावड़ी चले गए। गाना सुनने का बहाना। लेकिन फिर सुबह नहाना कैसा? और क-कह कर हमें जलाना। कहीं जल भी तो नहीं चुकते। लाख-लाख आँसू बहाते हैं। मुई आग ऐसी चौबीस घड़ी की लगी रहती है कि जरा बुझने का नाम नहीं लेती। मौत भी तो नहीं आती। हिंदुओं की जिंदगी कहीं हम से अच्छी है। आजादी तो है। ईसाइयों का तो क्या कहना। जो जी में आता है करती हैं। नाच नाचें, तस्वीरें देखें, बाल कटाएँ, लिखने वाला चैन लिखता है...

आग लगे ऐसे मजहब को। मजहब, मजहब, मजहब, रूह की तसल्ली मर्दों की तसल्ली है। औरत बेचारी को क्या? पाँच उंगली भर दाढ़ी रख के बड़े मुसलमान बनते हैं। टट्टी की आड़ में शिकार खेलते हैं। हमारे तो जैसे जान तलक नहीं। आजादी के लिए तो बस एक दीवार है। अब्बा जान ने किस मुसीबत से स्कूल में दाखिल किया था। मुश्किल से आठवीं तक पहुँची थी कि खुदाबख्शे दुनिया से चले गए। सबने ही तो फौरन स्कूल से नाम कटा दिया और इस मोटे-मुस्टन्डे, दाढ़ी वाले के साथ नत्थी कर दिया। मुवा शैतान है। औरत की आजादी तो आजादी, औरत का जवाब तक देना गवारा नहीं करता।

क्या समंदर सूख गए जो बादल नहीं आते, सूख गए? समंदर सात समंदर पार से आए, हमारी भी लुटिया डूब गई, गुड़प-गुड़प-गुड़प गोते लगा रहे हैं, अपने ही खून में नहा रहे हैं। धूप तो इतनी तेज है, भाप भी नहीं बनती। काहे की भाप बने, खून तो खुश्क हो गया, जल कर राख हो गया, लेकिन क्या सचमुच बादल भाप के बनते हैं? हम तो सुना करते थे कि बादल स्पंज की तरह होते हैं। हवा में तैरा करते हैं। जब गर्मी बहुत सख्त पड़ी, प्यास के मारे समंदर के किनारे उतर पड़ते हैं। खूब पानी पीते हैं और फिर हवा में उड़ जाते हैं। शायद हमारी सरकार के जहाजी बेड़े से डर के उड़ जाते हैं और तोपों के खौफ से मूतने लगते हैं। जो कुछ भी स्कूल में पढ़ाते हैं झूठ बकते हैं। बादल सचमुच भाप के नहीं होते। भूगोल गलत खौफे-बरतानियाँ दुरुस्त। दुरुस्त। यही बात है। ओ-हो बात समझ में आया। क्या समझे-जहाजी बेड़ा और तोप। लेकिन अफगान भी क्या तप्पुक मारता है। चट्टानों की आड़ में छिपा रहता है। जहाँ दुश्मन को देखा एक आँखें भींच लीं। शायद दोनों आँखें बंद कर लेता है। घोड़ा दबा दिया। ठाँय। टप से जिंदा जान मुर्दे की तरह गिर पड़ी। खूब मारा-खूब, लेकिन अफगान तो पैदल चलता है। मगर हवाई जहाज को एक गोली से गिरा लेता है। हमारे पास मोटर छोड़ इक्का भी नहीं। हम क्या करेंगे? चलो जलियांवाला बाग की सैर कर आएँ। मगर जाएँगे काहे में? हम बताएँ सरकंडे की गाड़ी दो बैल जोते जाएँ। वाह भाई वाह। खूब सुनाई। इतने सारे आदमी और सरकंडे की गाड़ी। पागल है भई पागल पीरी है बे लमड़द पीरी है। सफेदे की पीरी है। वह काटा, यों नहीं तो यों सही। हुश-हुश मेरे कान में घुस। सबके कान में घुस लेंगे। पागल है भई पागल है। वह काटा। यही तो मुसीबत है, सुनते तक नहीं। इस कान से सुना, उस कान से निकाल दिया। जूँ तक नहीं चलती। घड़ा भी क्या इतना चिकना होगा। मिट्टी में पड़े रौंदते हैं। सूरत तक को नहीं सँभालते। क्या शेर था-क्या? हमने अपनी सूरत बिगाड़ ली, उनको तस्वीर बनानी आती है। क्या था? एक हम हैं। हाँ, हम यह ही हम जिनको अपनी सूरत का एहसास नहीं। काले भुजंगे, मैले-कुचैले, लंगोटी में मस्त हैं। भाई बंदों में किसी ने काई बात कह दी लड़ने-मरने पर आमादा और दूसरे जो गला काट डालते हैं। उसका कुछ भी नहीं। जूते खाते हैं लाल सहते हैं। गालियाँ सुनते हैं और फिर वही लौंडों की सी बात, अबके तो मार। चाट। अच्छा अबके तो मार लिया। अबके तू मार। चाट-चाट। में, में। देखो बी अम्मा चुन्नु का बच्चा नहीं मानता, जबसे बरोबर मारे जा रहा है। उसको समझा लो, नहीं तो उस हरामजादे की।

माश अल्लाह-चश्मेबद्दूर-चश्मेबन्दूक, क्या मीठी गाली दी है। मुँह चूम ले। मुँह। जबान गुद्दी के पीछे से खींच के निकाल डाले, ऐसा चाँटा मारे कि सारा पिजूड़पन दूर हो जाये। कुत्ते की तरह मारते हैं, हड्डी दिखा कर मारते हैं, अजी पास बुला के मारते हैं, धार करके मारते हैं, प्यार करके मारते हैं, दुलार करके मारते हैं और तो और मार करके मारते हैं। और हम हैं कि कुत्ते की जाति फिर उनके चूतड़ों में घुसे जाते हैं। अफसोस तो यह है कि गू तक नहीं मिलता। आख थू... काले कुत्ते का गू। लानत तुम जैसे लोगों पर। बस बे छोटम। बस। चुन्नू की गाली सह ली। मार-मार देखता क्या है? लपक के, दे दबा के हाथ, मार और राजा मारी पोदनी हम बीर बसावन जाएँ। आपकी सूरत तो मुलाहजा हो। क्या पिद्दी का शोबा। हम बीर बसावन जाएँ। वाह मेरे सींख के पहलवान, वाह, कोई फबती कहो। खुदा लगती कहो। हम बैर बसावन जाएँ। हाँ, बेर कहते तो एक बात भी थी। मियाँ शेखपुर के बहुत अच्छे होते हैं। कभी

सहारनपुर के वीरों का भी नाम सुना है? अजी हजरत बैल होंगे, बैल, जी हाँ। बजा फरमाया, दुरुस्त बैल ही तो थे। हम बैर बसावन जाएँ। सरकंडों की गाड़ी दो बैल जोते जाएँ। और ...? राजा मारी पोदनी, हम बैर बसावन जाएँ। वाह मियाँ पोदने बड़ी हिम्मत की। मिट्टी का शेर है न? सरकंडों की गाड़ी में बैठेगा, बैलों पर, कि।

राजा मारी पोदी, हम बैर बसावन ...

महावटों की एक रात

- अहमद अली

गड़-गड़-गड़-ड़...इलाही खैर। मालूम होता है आसमान टूट पड़ेगा। कहीं छत तो नहीं गिर रही है? गड़-ड़-ड़

इसके साथ ही टूटे हुए किवाड़ों की झिर्रियां एक तड़पती हुई रौशनी से चमक उठीं। हवा के एक तेज झोंके ने सारी इमारत को हिला डाला। सू-सू-सू...ऊ...क्या सर्दी है। यख जमी जाती है, बर्फ जमी जाती है। कंपकंपी है कि सारे जिस्म को तोड़े डालती है। एक छोटा सा मकान चौबीस से चौबीस फिट और उसमें भी आधे से ज्यादा में संकरा दालान, पीछे एक पतला सा कमरा, नीचे और ज्यादा अंधेरा। कोई फर्श तक नहीं। कुछ फटे-पुराने बोरिए और टाट जमीन पर बिछे हैं, जो गर्द और सील से चिप-चिप कर रहे हैं। कोनों में छोटे बक्सों-बक्सियों और गूदड़ का ढेर है। एक अकेला लकड़ी का टूटा हुआ संदूक, उस पर भी मिट्टी के बर्तन, जो सालों-साल के इस्तेमाल से काले हो गए हैं और टूटते-टूटते आधे-पौने रह गए हैं। इनमें एक ताँबे की पतीली भी है, किनारे झड़ चुके हैं, सालों से कलई तक नहीं हुई, घिसते-घिसते पेंदा जवाब देने के करीब है। छत है कि कड़ियां रह गई हैं और उस पर बारिश अल्लाह-क्या महावटें (जाड़े की वर्षा) अबके ऐसी बरसेंगी कि गोया उनको फिर बरसना ही नहीं? अब तो रोक दो। कहां जाऊं? क्या करूं? इससे तो अच्छा मौत ही आ जाए। तूने गरीब ही क्यों बनाया? या अच्छे दिन ही न दिखाए होते। या यह हालत है लेटने को जगह नहीं। छत छलनी की तरह टपकी जाती है। बिल्ली के बच्चों की तरह सब कोने झाँक लिए। लेकिन चैन कहां? मेरा तो खैर कुछ नहीं, बच्चों निगोड़े मारों की मुसीबत है। न मालूम सो भी कैसे गए हैं। सर्दी है कि उफ़...बोटी-बोटी कांपी जाती है और उस पर एक लिहाफ़ और चार जानें। ऐ मेरे अल्लाह...जरा रहम कर।

या वो जमाना था कि महल थे, नौकर थे, फर्श और पलंग थे। आह वह मेरा कमरा, एक खपरखट सुनहरी, पर्दों से सजी-संवरी, मखमल की चादरें और सेंबल के तकिए। क्या नर्म-नर्म तोशक थी कि लेटे से नींद आ जाए। और लेहाफ़, आह...रेशमी छींट का और उसपर सच्चे ठप्पे की गोट। अन्नाएं, मामाएं खड़ी हैं, बीबी सर दबाऊं, बीबी पैर दबाऊं? कोई तेल डाल रही है, कोई हाथ मल रही है। गुदगुदा-गुदगुदा बिस्तर, ऊपर से सब चोंचले। नींद है कि सितारों का लिबास पहने सामने खड़ी है। सब्ज़ (हरे) शीशों पर नीले और सुर्ख और नारंगी अक्स, बड़े-बड़े हिश्त पहल जवाहरात के साबुत डले जगमग-जगमग कर रहे हैं...दस्तरख्वान पर चांदी की तश्तरियां, एक झिलमिलाहट। कोरमा, पुलाव, बिरयानी, मुतंजन, बाक़रखानियां, मीठे टुकड़े...एक बाग़ दरख्तों से घिरा हुआ जिनकी पत्तियों पर तारों की चमक शबनम में और रौशनी भर रही है। वाह-वाह क्या-क्या खुशनुमा फल हैं। आम, मुंहलाल कलेजा बाल मां का बग़द बच्चा, सेब कैसे खूबसूरत हैं, अंधेरे-अंधेरे दरख्तों पर सुर्ख और गुलाबी और पिस्ते लटके हुए हैं, डालियों समेत झुके हुए हैं। अरे, बेर तो देखो तो देखो कैसे मोटे-मोटे और लाल हैं। शेखूपुरे के से। एक नहर, अंधेरी रात में चांदी की चादर बिछी हुई है। शायद दूध है। कहीं जन्नत तो नहीं? एक कश्ती बड़ी शाइस्तगी से, बत्तखों की नज़ाकत से बहती हुई। जल्दी आओ, जल्दी बैठ जाओ, जन्नत की सैर कराएं। क्या बीवियां हैं, पाक साफ, बिल्लौर (एक सफेद पत्थर) जैसी गोरी? उजले बुर्राक कपड़े, नज़ाकत ऐसी जैसी हवा की। कश्ती, बढ़ते हुए चिराग़ की तरह पानी पर चल रही है। दोनों तरह खुले-खुले मैदान जो हरी-हरी दूब से ढके हुए हैं। बीच-बीच में फूलों के रंगीन तख्ते और फलों के दरख्त दिखाई देते हैं। जानवर चहचहा रहे हैं, और शोर मचा रहे हैं। तो क्या ये जन्नत है? क्या हम जन्नत में हैं? हां, 'बहिश्त', खुदा

के नेक और प्यारे बन्दों की जगह। कश्ती कुछ छोटे सीप की मानिंद चमकदार और गुंबदों की तरह गोल मकानों के सामने से गुजरी। क्या खूबसूरती और क्या चमक? निगाह तक नहीं ठहरती। टपकते तो न होंगे? क्या इनमें मुझको भी जगह मिलेगी? खुदा के नेक और सच्चे बन्दों के लिए है, पाक बन्दों के लिए।

पेट में एक खुर्चन, कलेजे में एक खिंचाव, अंतड़ियां बल का रही हैं। ऐसा मालूम हुआ कि गोद में किसी ने कुछ रख दिया। यह एक मोती की तरह सफेद और सेब की तरह बड़ा फल था। डंडी में दो हरे-हरे पत्ते भी लगे हुए थे। ऐसा मालूम होता था कि डाल से अभी-अभी तोड़ा गया हो। आहा...क्या मज़ा है। काश कि और होते। गोद भरी हुई थी। कश्ती दो पहाड़ों के बीच से गुजर रही थी। एक मोड़ था। थोड़ी देर में जब मोड़ खत्म हुआ तो यकायक दूर एक ऊंचे पहाड़ से बिजली से ज्यादा तेज रौशनी की लपटें आग की तरह उठती हुई दिखाई देने लगीं। आंखें चकाचौंध होकर बन्द हो गईं। अंधेरा घुप था। एक शोर की आवाज़ गरज से भी ज्यादा तेज आने लगी। सूर (क़यामत की घोषणा का साइरन) फुंक रहा था। कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। कश्ती वाली बीवियां इधर-उधर दौड़ रही थीं। इतने में फिर एक तेज रौशनी हुई। सूरज गिर रहा था। यकायक करीब से ही एक ऐसी आवाज आई, जैसे कोई ज्वालामुखी फट रहा हो। एक ज़लज़ला (भकम्प) आ गया। कश्ती लौट गई और सब दरिया में डूब रहे थे...

गड़-गड़, टप-टप की आवाज़ चारों तरफ से आ रही थी। अम्मां...अभी कानों में सनसनाहट बाकी थी। दिल गजों उछल रहा था। क्या है बेटा? क्या? डर लग रहा है। यह आवाज़ काहे की थी? कुछ नहीं बेटा गरज है। तीनों बच्चे चिमटे हुए एक कोने में पड़े हुए थे। टपका उनके लेहाफ़ तक पहुंच चुका था। मरियम की तरफ का कोना खूब भीग गया था। बेचारी ने उठ कर बच्चों को और परे सरकाया। अब वह बिल्कुल दीवार के बराबर पहुंच गए थे। या अल्लाह, अगर टपका यों ही बढ़ता रहा तो अबके भीगना ही पड़ेगा। अम्मां, सर्दी लग रही है। सिद्दीका उसके बराबर लेटी हुई थी। उसने चिपटा के लिटा लिया। रूई नहीं तो दुई ही सही। उधर दोनों लड़के चिमटे पड़े थे, लिपटे हुए, जैसे सांप दरख्त से लिपट जाता है।

या अल्लाह, रहम कर, खुदा गरीबों के साथ होता है, उनकी मदद करता है, उनकी आह सुन लेता है। क्या मैं गरीब नहीं? खुदा सुनता क्यों नहीं? है भी या नहीं? आखिर है क्या? जो कुछ भी है बड़ा जल्लाद है और फिर बड़ा बेइंसाफ है। कोई अमीर क्यों? कोई गरीब क्यों? उसकी हिक़मत है, अच्छी हिक़मत है, कोई जाड़े में ऐंठे, लेटने को पलंग तक न हो, ओढ़ने को कपड़े तक न हों। सर्दी खाए, बारिशें सहें, फाकें करें और मौत भी न आए। कोई है कि लाखों वाले हैं, हर किस्म का सामान है, किसी बात की तकलीफ नहीं। अगर वो थोड़ा-सा हमीं को दे दें तो उनका क्या जाएगा? ग़रीबों की जानें पल जाएंगी। लेकिन उनको क्या पड़ी। किसकी बकरी और कौन डाले घास। हमको बनाया किसने? अल्लाह ने? तो फिर हमारी परवाह क्यों नहीं करता है? किसलिए बनाया? रंज सहने और मुसीबत उठाने के लिए? अरे क्या इन्साफ है? वह क्यों अमीर है? हम क्यों नहीं? मरने के बाद इसका बदला मिलेगा, मौलवी तो यही कहते हैं। आखिरत किसकी? भाड़ में जाए यमलोक। तकलीफ़ तो अब है, ज़रूरत तो अभी है, बुखार तो इस वक्त चढ़ा हुआ है, और दवा दस बरस बाद मिलेगी? खुदा बचाए ऐसे आखिरत से। जब की जब भुगत लेते, अब तो कुछ हो, खुदा महज़ एक धोखा है। गुर्बत में गरीब रहने की तसल्ली, मासूसी में मायूस उम्मीद, मुसीबत में तकलीफ़ से संतुष्ट रहने का जरिया, खुदा सिर्फ धोखे की एक टट्टी। और मजहब कि वह भी वही दिखाता है, यही पढ़ाता है। फिर कहते हैं कि इल्म का खजाना है और फिर इफ्लास का बहाना है। बेवकूफों की अकल है। आगे बढ़ते हुओं, ऊपर चढ़ते हुओं

की पीछे खींचता है। तरक्की के रास्ते में एक रुकावट है। गरीब रहो, गुर्बत ही में खुदा मिलता है। हमने तो पाया नहीं। अमीरों से क्यों नहीं रुपया दिलवा देता? दौलत का क्या होगा? सिर्फ उतना ही चाहिए कि वक्त बसर हो जाए। आखिर अमीर ही दौलत का क्या करते हैं? तहखानों में पड़ी जंग खाती रहती है। किसी खर्च का भी ठीक नहीं। जो है, बेतुकेपन से उठता है, लुटता है। सरकार ही कुछ क्यों नहीं करती? और नहीं तो सबको बराबर रुपया दिलवा दे और अगर इतना नहीं तो हमको सिर्फ आधा ही मिल जाए। लेकिन सरकार की जूती को क्या गरज पड़ी है कि अपनी जान को हलकान करे। उसके तो खजाने पूरे हैं। बैठे-बिठाए रुपया मिल जाता है। उसको क्या? मौत तो हमारी है। जब पड़े तो जाने, ऊंट जब पहाड़ के नीचे आता है तो बिलबिलाता है। अभी तो...

अम्मां...हाँ बेटा क्या है? अम्मां भूख लगी है, भूख? मरियम के जिस्म में सनसनी दौड़ गई। या इलाही, क्या करूं? ओह, बेचारे बच्चे। मियां यह भी कोई भूख का वक्त है? भूख न हो गई, दीवानी हो गई। सो जा, सुबह हो तो खाना। नहीं अम्मां, मैं अभी खाऊंगा, बड़े जोर की भूख लगी है। नहीं बेटा, यह कोई वक्त नहीं, लेट जाओ। वह देखो कड़क हुई। बच्चा बेचारा कड़क की आवाज सुनते ही सहम कर लेट गया। कहां से लाऊं? क्या करूं? बारिश ने तो दिन भर निकलने भी न दिया कि किसी के यहां जाती और थोड़ा-बहुत जो कुछ भी मिलता लाकर सीती। बेचारी फ़य्याज़ बेगम के यहां भी जाना नहीं हुआ, वही बेचारी बचा-खुचा जो कुछ होता है, बराबर दे देती हैं। अब जो अगर कल भी कहीं से काम न मिला तो क्या होगा? आखिर कहां तक मांग-मांग कर लाऊं। देते-देते भी लोग उकता जाते होंगे।

अम्मां, भूख लगी है, देखो तो पेट खाली पड़ा है। कल दिन से कुछ नहीं खाया। नींद बिल्कुल नहीं आती। कलेजा मुंह को आ रहा था। बेचारी आखिर को उठी और दिए की मद्धिम रौशनी में टटोलती हुई सन्दूक की तरफ गई कि अगर कुछ मिल जाए तो बच्चे को दें। आखिर तो सिर्फ पांच बरस की जान है। काश, मैंने इन बच्चों को जना ही न होता। मैं तो मर-गिर काट ही लेती। लेकिन उनकी तकलीफ तो देखी नहीं जाती। एक सूखी रोटी एक हड़िया में पड़ी पा गई, उसको तोड़कर पानी में भिगोया और बच्चे की सामने ला रखी। पेट बड़ी बुरी बला है। बेचारा कुत्ते की तरह चिमट गया। थोड़ी खाने के बाद बोला, अम्मां जरा गुड़ हो तो दे दो। मरियम भी खड़ी हो गई कि शायद गुड़ की डली भी मिल जाए। इत्तफाक से एक छोटी से डली पा गई। बच्चे ने जो हो सका, खाया। दो-चार निवाले जो बचे थे, मरियम अपने को रोक न सकी, और थोड़ा-थोड़ करके खा गई...

कड़क और चमक रुक चुकी थी। बारिश भी कम हो गई थी, फिर सिद्दीका से चिमट कर लेट गई और अकेली थी। आह...काश कि वह होते, आह...वह होते। वह, वह, वह...रात को आते। कुछ न कुछ लिए चले आते हैं, क्या लाए हो? हलवा सोहन है। वही निगोड़ा पपड़ी का होगा। तुम जानते हो कि मुझे हब्शी पसंद है। लो फिर चीखने लगी, देखा तो होता। आह, वह झगड़े और मिलाप। सावन और भादों के मिलाप। क्या दिन थे? अब तो एक ख्वाब है। फिर चांदनी रातों में फूल वालों की सैर। आह...वह सेजें। क्या महक थी...दिमाग फटा जाता था। और अब तो बासी फूल भी नहीं। ऐ काश, वह होते। वो टांगें, हरा-भरा दरख्त, गोश्त, हड्डी और गूदे का। उसका रस खून से ज्यादा गर्म और उसकी खाल गोश्त से ज्यादा नर्म। एक तना हल्का और मजबूत दो डालें। दो डालें और एक तना। एक-दूसरे में पैबन्द, एक-दूसरे में चिमटी हुई, एक-दूसरे में एक दूसरे की रूह, जुड़ी हुई, बल खाई हुई। एक दूसरे की जान और एक दूसरे में, एक तीसरी रूह की उम्मीद, एक पूरी ज़िन्दगी का खजाना, एक लम्हे का सरमाया (सम्पत्ति) परनेस्ती (विनाश) में हस्ती की ताकत। आह...वो टांगें...दो नाग बल खाए हुए, ओस से भीगी घास में मस्त पड़े हैं। एक सुई के छेद में तागा

और उंगलियां, तेज़-तेज़ चलती हुई, सपाटे भरती हुई, नर्म-नर्म रोएंदार मखमल पर गुलकारियां करती हुईं। एक मकड़ी अपनी जगह स्थिर जाला बुन रही है, ऊपर-नीचे हिल रही है, कुछ खबर नहीं कि मक्खी जाल में फंस चुकी है और लाआब है कि तार बना जाता है। जाल बना जाता है। एक डोल कुएं की गहराई में लटका हुआ उसकी मुलायम रेत की गर्मी महसूस कर रहा है। पानी की सतह पर छोटे-छोटे दायरे, बढ़ते-बढ़ते सारे में फैल गए, दीवारों से टकराने लगे, बाहर जाने लगे, एक सनसनी और हरारत सारे में फैला रहे हैं। दो जुड़वा दरख्त, एक पीपल और एक आम, एक ही जड़ में उगे हुए, एक ही तने से पैदा, एक ही ज़िन्दगी के हमराज थे कि उग रहे थे एक दूसरे का सहारा, एक दूसरे की तसल्ली, एक ही हवा में सांस लेते, एक ही सूत के पानी में जीते थे। आह...वह जिस्म, और अब तो पीपल को बिजली ने जला डाला। जड़ से मसल डाला। मगर आम है कि किस्मत का मारा अभी तक खड़ा है। काश...उस पर भी बिजली गिरी होती...लुंजा अकेला मुरझाया हुआ। चिथड़ी की जान अभी तक ठोकरें खाने को जिन्दा है। अगर वह होते...

लेहाफ़ में एक हरकत, सिद्दीका ने करवट ली। आह...ज़माना किसके बहलावे में नहीं आता, किसके फुसलावे में नहीं आता और मैं एक अकेली हूं, आह...मैं अकेली हूं। इससे तो ज़िन्दगी का लुत्फ़ देखा ही न होता तो आज यह तन्हाई महसूस नहीं होती। मेरे दिल में कोई जगह खाली न होती, मोहब्बत की जगह। उम्मीद भी क्या झूले झुलाती है। कभी पास आती है, कभी दूर जाती है। लेकिन उम्मीद काहे की। अब तो एक मायूसी है, सारे में फैली हुई है। बादलों की तरह उमड़ी हुई है। वह सूत की रस्सी का झूला, चार हमजोलियां, पटरे एक-एक, किनारे पर दो-दो, और पैंगे हैं कि दरख्त को हिलाए डालते हैं, घनघोर घटाओं में घुस आते हैं। झूला किन ने डाला रे आमोरियां...वह अनवर और किश्वर, बस इतने ही पेंग ले सकती हो? देखो मैं और कुबरा कितनी बढ़ाते हैं...चक्कर न आ जाए जभी कहना...फिर एक हंसी का शोर और कहकहों की आवाज़...अब तो ज़िन्दगी एक हव्वा है। बागेइरम (जन्नत) और सूरों की अटखेलियां, फूलों के हार और ओस की झूमर ने वह बेर डाली, कहां मेरा आशियाना? फिर एक तपती हुई चट्टान, बंजर और उसके पहलू से ज़िन्दगी, लेकिन फिर एक नई हस्ती, फिर एक नई आन, मन व सलवा के मजे। दूध की मीठी नहरों में नहाना और उनमें खेलना। फिर दिन ईद, रात शबेरात। लेकिन आह...ज़माने की एक करवट-इब्लीस, अरे-आदम--न फिर तकलीफ़, मुसीबत, मलामत, बलाएं। फिर वही खुशी और खुर्मी। एक क़यामत बर्पा है। नफ़सी-नफ़सी का आलम, इसराफ़ील (क़यामत के उद्घोषक) का शोर, दज्जाल (इस्लामी मान्यता के अनुसार क़यामत से पहले खुद को खुदा घोषित करके लोगों को बहकाने वाला) है कि सबको फुसला रहा है। मैं तो उसी के पास जाऊंगी। उम्मीद तो है। आह...यह तन्हाई कोई सर पर हाथ रखने वाला भी नहीं। न तसल्ली, न तशफ्फी, न दिलासा। तन्हाई-तन्हाई। रात अंधेरी और भयानक रात। अरे, ला दो कोई जंगल मुझे...जंगल मुझे...बाज...या...बाजार भोऊ...ओझ....रात।

❀

दिल्ली की सैर

- रशीद जहाँ

"अच्छी बहन, हमें भी तो आने दो" यह आवाज दालान में से आयी, और साथ ही एक लड़की कुर्ते के दामन से हाथ पोंछती हुई कमरे में दाखिल हुई।

मलका बेगम ही पहली थीं जो अपनी सब मिलने वालियों में पहले पहल रेल में बैठी थी। और वह भी फरीदाबाद से चलकर देहली एक रोज के लिए आयी थी। मुहल्ले वालियाँ तक उनके सफर की कहानी सुनने के लिए मौजूद थी।

"ऐ है आना है तो आओ। मेरा मुँह तो बिल्कुल थक गया। अल्लाह झूठ न बुलवाए तो सैकड़ों ही बार तो सुना चुकी है। यहाँ से रेल में बैठकर दिल्ली पहुँची और वहाँ उनके मिलने वाले कोई निगोड़े स्टेशन मास्टर मिल गये। मुझे सामान के पास छोड़ कर यह रफूचक्कर हुए और मैं सामान पर चढ़ी नकाब में लिपटी बैठी रही। एक तो कमबख्त नकाब, दूसरे मरदुवे। मर्द तो वैसे ही खराब होते हैं, और अगर किसी औरत को इस तरह बैठे देख लें तो और चक्कर पर चक्कर लगाते हैं। पान खाने तक की नौबत न आयी। कोई कमबख्त खाँसे, कोई आवाजे कसे, और मेरा डर के मारे दम निकला जाये, और भूख वह गजब की लगी हुई कि खुदा की पनाह! दिल्ली का स्टेशन क्या है बुआ किला भी इतना बड़ा न होगा जहाँ तक निगाह जाती थी स्टेशन ही स्टेशन नजर आता था और रेल की पटरियाँ, इंजन और मालगाड़ियाँ। सबसे ज्यादा मुझे उन काले-काले मर्दों से डर लगा जो इंजन में रहते हैं।"

"इंजन में कौन रहते हैं?" किसी ने बात काट कर पूछा!

"कौन रहते हैं? मालूम नहीं बुआ कौन। नीले-नीले कपड़े पहने, कोई दाढ़ी वाला, कोई सफाचट। एक हाथ से पकड़ कर चलते इंजन में लटक जाते हैं, देखने वालों का दिल सनसन करने लगता है। साहब और मेम साहब तो बुआ दिल्ली स्टेशन पर इतने होते हैं कि गिने नहीं जाते हैं। हाथ में हाथ डाले गिटपिट करते चले जाते हैं। हमारे हिन्दुस्तानी भाई भी आँखें फाड़-फाड़ कर तकते रहते हैं। कमबख्तों की आँखें नहीं फूट जाती हैं। एक मेरे से कहने लगा - जरा मुँह भी दिखा दो।"

"मैंने तुरन्त..."

"तो तुमने क्या नहीं दिखाया?" किसी ने छेड़ा।

"अल्लाह-अल्लाह करो बुआ। मैं इन मुवों को मुँह दिखाने गयी थी। दिल बल्लियों उछलने लगा 'तेवर बदल कर' सुनना है तो बीच में न टोको।"

एक दम खामोशी छा गयी। ऐसी मजेदार बातें फरीदाबाद में कम होती थी और मलका की बातें सुनने तो औरतें दूर-दूर से आती थीं।

"हाँ बुआ सौदे वाले ऐसे नहीं जैसे हमारे यहाँ होते हैं। साफ-साफ खाकी कपड़े और कोई सफेद, लेकिन धोतियाँ। किसी-किसी की मैली थी टोकरे लिये फिरते हैं, पान, बीड़ी, सिगरेट, दही-बड़े, खिलौना है, खिलौना और मिठाइयाँ चलती हुई गाड़ियों में बन्द किये भागे फिरते हैं। एक गाड़ी आकर रुकी। वह शोर गुल हुआ कि कानों के पर्दे फटे जाते थे, इधर कुलियों की चीख पुकार उधर सौदे वाले कान खाये जाते थे, मुसाफिर हैं कि एक दूसरे पर पिले पड़ते हैं और मैं बेचारी बीच में सामान पर चढ़ी हुई। हजारों ही की तो ठोकरें धक्के खाये होगे। भई जल तू जलाल तू आयी बला को टाल तू घबरा-घबरा कर पढ़ रही थी। खुदा-खुदा करके रेल चली तो मुसाफिर और कुलियों में लड़ाई शुरू हुई।"

"एक रुपया लूँगा।"

"नहीं, दो आने मिलेंगे।"

"एक घण्टा झगड़ा हुआ जब कहीं स्टेशन खाली हुआ। स्टेशन के शोहदे तो जमा ही रहे। कोई दो घण्टा के बाद यह मूँछों पर ताव देते हुए दिखाई दिये और किस लापरवाही से कहते हैं - भूख लगी हो तो कुछ पूरियाँ-वूरियाँ ला दूँ, खाओगी? मैं तो उधर होटल में खा आया।"

मैंने कहा कि - "खुदा के लिये मुझे घर पहुँचा दो, मैं बाज आई इस मुई दिल्ली की सैर से तुम्हारे साथ तो कोई जन्नत में भी न जाये, अच्छी सैर कराने लाये थे।" फरीदाबाद की गाड़ी तैयार थी उसमें मुझे बिठाया और मुँह फुला लिया कि...

"तुम्हारी मर्जी सैर नहीं करती तो ना करो।"

❀

पर्दे के पीछे

- रशीद जहाँ

एक कमरा जिसमें सफेद फर्श बिछा है और कमरे के बीच में एक दुलाई बिछी है। उस पर गाव तकिया से लगी एक बीबी बैठी है जो दुखी और थकी हुई मालूम होती है। उनके करीब एक छोटी-सी सुराही कटोरे से ढँकी हुई, ताँबे की तश्तरी में रखी हुई है। उनके सामने एक दूसरी बीबी बैठी हुई है जो चालीस के करीब उम्र की हैं और छलिया काट रही हैं। एक तरफ उनकी पिटारी रखी है और दूसरी तरह उगलदान, कमरे में दरवाजे सामने हैं और बाकी जगहों में ताक और अलमारियाँ हैं जिनमें बर्तन और सरपोश चुने हैं। बीच में छत पर से पंखा टँगा है जिस पर गुलाबी झालर लगी है... कमरे के एक कोने में पलंग, उस पर पलंगपोश पड़ा है, दूसरी तरफ एक और दुलाई बिछी है, गाव तकिया लगा है और उगालदान रखा है।

मुहम्मदी बेगम - ऐ है आपा, हमारा क्या है, इतनी गुजर गयी, जो बाकी है वह भी खुदा किसी न किसी तरह गुजार देगा। मेरा दिल तो अब दुनिया से उकता गया है। अगर इन छोटे बच्चों का खयाल न होता तो खुदा की कसम मैं तो जहर ही खा लेती।

आफताब बेगम - दीवानी हुई हो बुआ! अच्छा अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जो जहर खाने लगीं अब तो तुम्हारे बहार देखने के दिन आये हैं। बच्चे अब बड़े हो रहे हैं, अब चली हैं जहर खाने। मुझे देखो...

मुहम्मदी - तुम्हें क्या देखूँ। कोई उम्र की बात है, कोई बड़े ही दुनिया से तंग आते हैं। हमने तो जितनी जिन्दगी ही हवस बूढ़ों में देखी उतनी जवानों में न देखी। सारी दुनिया मरी जा रही है, न मालूम हमारी मौत कहाँ जा कर सो रही है। बच्चे- वच्चे सब भूल जाते हैं और थोड़े ही दिन में सब ठीक।

आफताब - होश में आ लड़की होश में। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जो मरने की फिक्र सवार है। मेरे से तो दस बारह बरस छोटी। मेरे ब्याह की बातें हो रही थीं जिस बरस तुम पैदा हुई हो। उस साल मलका मरी थी, मुझे खूब अच्छी तरह याद है। अल्लाह बख्शे चची अम्मा कितनी खुश थीं। मेरे लिए तो बिटिया ही है। चची अम्मा के ब्याह के तीस बरस बाद तुम पैदा हुई थीं। खाना, नाच-रंग और क्या-क्या डोमनियाँ आयी हैं। और तो और, तुम्हारा ब्याह भी किन अरमानों से हुआ है। सारी दिल्ली वाह-वाह बोल गयी थी, तुम्हारे बराबर कौन भाग्यशाली होगा। मुझ दुखिया की ओर देखो, तुम्हारे तो अल्लाह रखे मियाँ बच्चे घर सब ही कुछ है।

मुहम्मदी - हाँ ठीक है, मियाँ बच्चे घर सब ही कुछ है। जवानी! कौन मुझे जवान कहेगा? सत्तर बरस की बुढ़िया मालूम होती हूँ। रोज-रोज की बीमारी, रोज- रोज के हकीम डाक्टर और हर साल बच्चे जनने। हाँ, मुझसे ज्यादा कौन भाग्यशाली होगा। (यह कह कर आँखों में आँसू भर आये, रूमाल से आँसू पोंछ कर और उगलदान में थूक कर फिर शुरू किया।)

अभी दो महीने की बात है। पिछला बच्चा गिरने से पहले की बात है कि डाक्टरनी को बुलाने की सलाह हुई। डाक्टर गयास ने भी कहा कि अन्दरूनी खराबी की वजह से रोज-रोज बुखार न रहता हो बेहतर है कि डाक्टरनी अंदर से देख

ले। लो उम्र की बात सुनो। डाक्टरनी ने मुझसे मेरी उम्र पूछी। मैंने कहा, 32 साल! कुछ इस तरह से मुस्कुरायी जैसे कि भरोसा न हुआ हो। मैंने कहा, मिस साहब, मुस्कुराती क्यों हैं? आप को मालूम हो कि सत्तरह साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी और जब से हर साल मेरे यहाँ बच्चा होता है। सिवा एक तो जब मेरे पति साल भर को विलायत गये थे और दूसरे जब मेरी उनकी लड़ाई हो गयी थी! और जो यह दाँत आप गायब देख रही हैं डाक्टर गयास ने उखाड़ डाले। पायरिया वायरिया या न मालूम कौन बीमारी होती है वह थी! सारी बात यह है कि हमारे पति जो विलायत से आये तो उनको हमारे मुँह से बदबू आती थी। (वह बेचारी खूब हँसी।)

आफताब - तुम बातें ही ऐसी करती हो कि सुनने वाली हँसे न तो क्या करे।

मुहम्मदी - खैर उस बेचारी ने सीना देखा, पेट देखा जब अंदर से देखा तो घबरा कर कहने लगी - बेगम साहब, आप को तो फिर दो महीने का बच्चा मालूम होता है। मेरा तो दिल सन्न से हो गया कि लो और आफत आ गयी। (इतने में बच्चों के रोने की आवाज दूसरे कमरे से आयी! बेगम साहब गाव तकिया से उठ बैठीं और चीख कर कहा) अरे कमबख्तों न दो मिनट सोने का आराम न बात करने की मोहलत! इतनी हरामजादियाँ भरी हैं फिर भी बच्चे शोर मचाते जाते हैं।) (कमरे का दरवाजा खुला, दो अन्नाएँ, साफ कपड़े पाजामे, मखमल के कुरते, दुपट्टे पहने दो बच्चों को रोता हुआ लेकर आयीं और कुछ बच्चे उनसे बड़े दरवाजे में खड़े दिखे जो कमजोर, दुबले पतले थे।)

एक अन्ना - बेगम साहब, यह बड़े नन्हे मियाँ नहीं मानते, जब कमरे में आते हैं बच्चों को सताते हैं खेलने नहीं देते। अब नन्ही बी की गुड़िया और छोटे मियाँ के गेंद ले कर भाग गये और सीधे मर्दाने में चले गये कई बार।

मुहम्मदी - (गुस्से से) कसाई है, निगोड़ा कसाई। घर में किसी को चैन नहीं लेने देता। आखिर किस बाप का बेटा है!

(बच्चे को गोद में लेकर प्यार किया, पिटारी से कुछ निकाल कर खाने को दिया और उसके बाद अन्ना को वापस कर देती है।)

जाओ, खुदा के लिए अब सिधारो! सुबह से शाम तक चीख-पुकार! *(फिर ठहर कर)* अरे किवाड़ तो बन्द कर दो। जब इधर से निकलेगी किवाड़ खुला छोड़ देंगी।

आफताब - बुआ, तुम्हारे घर में हर समय तो यह मुवा डाक्टर खड़ा रहता है, फिर भी बच्चे देखो, दुबले, पीले, फाकों के मारे मालूम होते हैं।

मुहम्मदी - ऐ, आप ही होंगे जिनको माँ का दूध नसीब न हो! अन्नाएँ जैसी मिल गयीं, रख ली गयीं। मियाँ का हुक्म है कि जब खुदा ने रुपया दिया है तो तुम क्यूँ दुख उठाओ। सारा मजा अपनी इच्छा का है कि जब बच्चा मेरे पास रहेगा तो स्वयं को तकलीफ होगी। न रात देखें न दिन, बस हर समय बीवी चाहिए। और बीवी पर ही क्या है, इधर-उधर जाने में कौन से कम हैं।

आफताब - मुहम्मदी बेगम, तुम तो हर बात में बेचारे अपने मियाँ को ही दोषी ठहराती हो। अन्ना रखे तो बुरा, न रखता तो बुरा होता। बुआ, अल्लाह-अल्लाह करो।

मुहम्मदी - ऐ है आपा, तुम यहाँ नहीं थीं जब नसीब मरा है। चार महीने की जान। जो तकलीफ उस पर गुजरी है वह खुदा दश्मन पर भी न डाले। गैरों से न देखी जाती थी। उसकी अन्ना थी तो काफी हट्टी-कट्टी! देखने में तन्दुरुस्त लेकिन गर्मी की बीमारी थी। अब इसकी किसे खबर थी। बच्चा बीमार पड़ा। यह बड़े-बड़े छाले बदन पर पड़ गये। और फूटे तो कच्चा-कच्चा गोश्त निकल पड़ा। जोड़-जोड़ में पीप पड़ गये। तसला भर-भर के डाक्टर गयास ने निकाला। मैं पर्दे के पीछे से देखती थी। दो महीने इसी तरह सड़-सड़ कर बच्चा चला गया। इसके बाद तीन बच्चे हुए। कितना कहा मैं स्वयं दूध पिलाऊँगी, लेकिन सुनता कौन है। धमकी यह है कि दूध पिलाऊँगी तो मैं दूसरी शादी कर लूँगा। मुझे हर समय औरत चाहिए। मैं इतना सबर नहीं कर सकता कि तुम बच्चों की टिल्ले नवीसी और फिर तुम कहती हो -

आफताब - ऐ है, तो यह बात है। मुझे क्या मालूम। खुदा ऐसे मर्दों से बचाये, जानवर भी तो कुछ डरते हैं। यह तो जानवरों से भी बदतर हो गये। ऐसे मर्दों के पाले तो कोई न पड़े। ऐसी बातें बुआ पहले न थीं, अब जिस मर्द को सुनो कमबख्त यही आफत है। अब तुम्हारे बहनोई हैं। खैर अब तो बुढ़ापा है, कभी जवानी में भी ज्यादती नहीं की (मुस्कुरा कर) खुदा की कसम पहरों नाक रगड़ाती थी।

मुहम्मदी - *(ठण्डी साँस लेकर)* अपनी-अपनी किस्मत है। तुम्हारी इस बात पर याद आया कि वह डाक्टरनी वाली बात पूरी नहीं हुई। बात कहाँ की कहाँ जा पहुँची है। जब डाक्टरनी ने कहा मेरे दो महीने का पेट है। वह हैरानी से कह रही थी - बेगम साहब, आप तो कह रही थीं चार महीने से आप पलंग पे पड़ी हैं। रोज शाम को बुखार आता है और डाक्टर गयास भी यही कह रहे थे कि रोज शाम को 100 या 101 पर बुखार आ जाता है। तो आपका मतलब है कि आपके... मैंने कहा - ऐ मिस साहब! तुम भी भली हो, कमाती हो, खाती हो, मजे की नींद सोती हो, यहाँ तो मुर्दा जन्नत में जाय या दोजख (नर्क) में, अपने हलवे-माँडे से काम है। बीवी चाहे अच्छी हो चाहे मर रही हो, मर्दों को अपनी इच्छा से काम है। वह बेचारी सुनकर खामोश हो गयी। कहने लगी, आप इतनी बीमार हैं। और बुआ, वह ही बेचारी क्या... सभी डाक्टर यही कहते हैं कि आपके बच्चे किस तरह मोटे हों जब आप स्वयं इतनी कमजोर हैं और दूसरे बच्चे इतनी जल्दी-जल्दी होते हैं। क्या किया जाय, इससे तो क्रिस्टन होते तो भले रहते।

आफताब - तौबा करो तौबा! कुफ्र न बको! खुदा इन काफिरों को मिटाए। एक बेटा है वह भी एक क्रिश्चन कर बैठा। मुझे उसके ब्याह के क्या-क्या अरमान थे। अब तो भाई ने तंग आकर वहीदा की मँगनी कर दी। हाय मेरे दिल पर क्या-क्या न साँप लोटेंगे कि मेरे बचपन की माँग गैर के घर जाये। इससे तो वह पैदा न हुआ होता तो बेहतर होता और मेरे लिए तो मर गया।

मुहम्मदी - किस दिल से कोसती हो। बुढ़ापे का सहारा है, कभी तो ठीक होगा।

आफताब - ऐ, वो क्या ठीक होगा। दो बरस हो गये, सूरत देखने को तरस गई। शहर के शहर में रहता है, कभी आकर झाँकता भी नहीं, अब तो सुना है ड़ेढ़ सौ मिलने लगे हैं। खुदा का यही शुक्र है कि बच्चे अभी तक न हुए। मैं तो यही दुआ माँगती हूँ कि आफताब बन्दी, चाहे तेरी कब्र पर चराग जलाने वाला कोई न हो, लेकिन उस हरामजादी, ईसाइनी के तो बच्चा न हो। हाय बुआ, किससे अपना दर्द कहें, सब अपनी-अपनी मुसीबतों में घिरे हैं, मुहम्मदी बेगम।... तुमने कुछ और भी सुना, मिर्जा मकबूल अली शाह ने और ब्याह कर लिया, दो बीवियाँ मर चुकीं, पोतियाँ,

नवासियाँ तक बच्चे वालियाँ हो गयीं और यह नई बीवी भी क्या भोली- भाली शक्ल की है। जवान है, बिल्कुल जवान, मुश्किल से कोई बीस बरस की होगी, कमबख्त की किस्मत फूट गयी। अभी तो बेचारी के छे कुँवारी बहनें और बैठी हैं जब ही तो बेचारे माँ-बापू ने...

(इतने में बड़े शहजादे, कोई 12 साल की उम्र, मिट्टी में पजामे की मुहरियाँ भरी हुई, जोर से किवाड़ खोल कर आते हैं। एक हाथ में रेल, दूसरे में कैंची और उनके पीछे- पीछे एक तन्दुरुस्त लड़की तंग पाजामे में मलगुजे कपड़े, दुपट्टा लटका हुआ आता है।)

लड़की - देख लीजिए अम्मा! यह बड़े मिर्जा नहीं मानते। यह देखिए मेरा नया पजामा काट दिया। (यह कह कर कुर्ता उठा कर दिखाती है।) मैं उनसे बात भी नहीं कर रही, चुपचाप बैठी अब्बा की अचकन में बटन टाँक रही थी। और देखिए यह दुपट्टे का आँचल भी फाड़ दिया। (दीवार से लग कर खिसिया कर रोने लगी। लड़का बहन की नकल उतारते हुए)

लड़का - ऊँ, ऊँ, ऊँ अपनी नहीं कहतीं। हाँ, तुम सी रही थी? कह दूँ अम्मा से यह वाहियात किताबें पढ़ रही थी - दिलदार यार या बाँका छैला। मैंने ठीक से नहीं देखा कि क्या था।

लड़की - *(तुरन्त मुड़ कर)* खुदा के लिए इतना झूठ मत बोला करो, खुदा की कसम अम्मा! मैं मौलवी अशरफ अली साहब का 'बेहिश्ती जेवर' पढ़ रही थी। मेरे पीछे पड़ गये कि दिखाओ। जब मैंने नहीं दिखाया तो मेरा पजामा काट दिया। आप कभी इन्हें कुछ नहीं कहतीं।

मुहम्मदी - *(माथा पीट कर)* शाबाश है बेटी, शाबाश। अम्मा मरें या जियें, हाथ बँटाने से तो रही, और छोटे बहन-भाइयों से लड़ती हो। (बेटे की तरफ मुड़ कर) यह मूजी तो सारे दिन किसी न किसी को परेशान करता रहता है। भाग यहाँ से।

आफताब - आओ मियाँ, मुझे कैंची दो, देखो अपनी आपा को कौन परेशान करता है। वह बेचारी कुछ दिन के लिए तुम्हारे पास है। अब बरस दो बरस में ब्याह कर ससुराल चली जायेगी तो सूरत देखने को तरस जाओगे!

(साबरा ने इस वाक्य पर शरमा कर सर झुका लिया और चुपके से पीछे खिसक जाती है। बड़े मिर्जा गाव तकिया का घोड़ा बना कर बैठ जाते हैं और पल भर ठहर कर कूदने लगते हैं।)

लड़का - तो फिर यह हमें क्यूँ नहीं दिखाती थीं?

मुहम्मदी - ऐ है, मिर्जा, खुदा के लिए रहम करो, और इस तरफ मुझको न हिला डालो। सारा जिस्म हिला दिया। कमबख्त धड़कन होने लगी। खुदा के लिए जाओ, बाहर जाओ अपने अब्बा के पास और मौलवी साहब आते ही होंगे, सबक याद कर लिया?

आफताब - ज्यादा बच्चे होते हैं तो कम से कम घर तो भरा-भरा मालूम होता है। लेकिन हर समय का शोर-गुल नाक में दम कर देता है। बुआ, अब मैं घर में हर समय कव्वा हँकनी की तरह बैठी रहती हूँ। यह आते हैं नमाज पढ़ने। घड़ी-दो घड़ी बैठे, फिर बैठक में चले गये। खुदा किसी को ऐसा अकेला भी न करे। हाय, क्या-क्या अरमान थे।

(दरवाजा खुलता है और एक कोलन आती है।)

कोलन - सलाम बेगम साहब, सलाम। बड़ी बेगम, लीजिए मैं तो आप के यहाँ हिस्सा ले कर जाने वाली थी, कहो बेगम, मिजाज कैसा है, अल्लाह रखे बच्चे कैसे हैं?

मुहम्मदी - हाँ, बुआ, मैं तो जैसी हूँ वैसी हूँ। कहो भाभी, अच्छी हैं। सब बच्चे अच्छे हैं। खुदा पोता मुबारक करे। पंजीरी होगी। रहीमन ले, तश्तरी खाली कर दे। *(सन्दूकची खोलते हुए)* आपा एक टुकड़ा पान का दे देना।

आफताब - रहीमन, मेरा हिस्सा यहीं ले ले।

(यह कह कर पान लगाने लगीं, मुहम्मदी ने दो आने कोलन को दिये।)

मुहम्मदी - सब को दुआ सलाम कह देना। किसी रोज तबीयत अच्छी रही तो आऊँगी, सब के मिलने को दिल फड़क गया। बच्चे को देखने को बड़ा दिल चाहता है। और बुआ, भाभी से कहना तुमने तो न आने की कसम खा ली है।

(अफताब ने पान दिया और कमरबन्द से आने निकाल कर दिये।)

कोलन - बेगम साहब, हमारी बीवी भी बहुत प्यार करती है। फुर्सत नहीं मिलती, आजकल तो खैर घर भरा है। सब ही आये हुए हैं।

आफताब - सुल्तान देलहन को मेरी ओर से दुआ कह देना और कहना पोता मुबारक हो। मैं जुमा को इंशा अल्लाह आऊँगी।

(कोलन प्लेट ले कर दोनों को सलाम करके चली जाती है।)

मुहम्मदी - आपा, हमारी भाभी सुल्ताना का भी खूब तरीका है। उनके मियाँ ने कभी चालीस रुपये से ज्यादा नहीं कमाया लेकिन वह सलीका है कि माशा अल्लाह सब कुछ किया। बेटों का ब्याह किया, बेटियों का ब्याह किया। अब बेटा नौकर हो गया है, कोई सवा सौ का आगे बढ़ने की भी उम्मीद है।

आफताब - बहू भी अच्छी है *(ठंडी साँस भर कर)* अपनी-अपनी किस्मत है। एक हम हैं! खैर यह तो होगा, कहो कहो रजिया की भी कुछ खबर है? तुम्हारे मामू ने तो उसकी ऐसे चट मँगनी पट ब्याह किया कि किसी को बुलाया तक नहीं।

मुहम्मदी - बुलाया तक नहीं तो क्या हुआ। घर-घर दोहरा-तीहरा खाना भिजवाया था। शादी उस गरीब की जैसे हुई वह अपनी बदनामी के डर से जल्दी कर दी और उसमें भी खुदा उनका भला करे।

आफताब - ऐ है, यह बात थी, तो मुझे मालूम ही नहीं। हाँ तो फिर क्या हुआ?

मुहम्मदी - तुम्हें नहीं मालूम। अब तो सभी को मालूम है। इस बेचारी की उम्र ही क्या है। मेरी साबरा से दो ढाई साल बड़ी है। मेरी शादी के बाद पैदा हुई है। जब छोटे मामू बरसों बाद कलकत्ता से आए, हम सभी जमा थे, नानी अम्मा बेचारी सबसे ज्यादा खुश थीं। रजिया को मैं कुछ रोज के लिए साथ ले आयी। फिर छोटी मुमानी मैके चली गयीं। लड़की तीन-चार महीने रह गयी। रजिया ननिहाल पर जान देती है। ननिहाल से उसे कुछ मुहब्बत नहीं। बड़ी बहन का घर था, रह गई तो क्या हुआ। मेरे फरिश्तों तक को खबर नहीं। जब माँ मैके से आई तो रजिया घर चली गई। एक रोज रजिया का खत आया कि आपा जान, खुदा के लिए जल्दी आइए। बस आपा क्या बाताऊँ, जब वहाँ पहुँची तो आप तो जानती हैं छोटी नानी कैसी हैं। खुदा की पनाह, बहुत आव-भगत की। रजिया ने चुपके से एक खत दिया और कहा, दुल्हा भाई रोज हमारे यहाँ आते हैं। और अम्मा बड़ी खातिर करती हैं। और चुपके-चुपके बातें होती हैं। कुँवारी लड़की और क्या कहती। यह भी बेचारी ने बड़ी हिम्मत की। खत देखूँ तो हमारे मियाँ का रजिया के नाम। वह प्रेम पत्र कि नावेलों में भी न होगा। बस मैं जल ही तो गई। रजिया को समझा कर कि तुम कुछ न कहो, मैं किसी से तुम्हारा नाम नहीं लूँगी, मैं जलती-सुलगती घर पहुँची। उनसे कहा, ऐ आपा, खुदा की कसम! दीदों में घुस गये कि क्या बुराई है और मैं तो रजिया से शादी करूँगा, चाहे तुम्हें तलाक ही देना पड़े। मैंने कहा, मियाँ, होश में हो या बिल्कुल ही बेहोश हो। शरीफों की लड़की है, अगर उसका नाम भी लिया तो उसके बाप, चाचा, भाई तुम्हारी हड्डी-बोटी एक कर देंगे। इन खयालों में भी न रहना।

आफताब - तो तुम्हारी मुमानी ने चुपके-चुपके बात पक्की कर ली होगी, इसलिए तो गर्व के साथ कह रहे होंगे।

मुहम्मदी - ऐ और क्या। उन्हें अल्लाह बख्शे, अम्मा और मुझसे हमेशा की दुश्मनी है। जब अम्मा बीमार थीं तब कसमें खा-खा कर कहती थीं तब तक चैन न लूँगी जब तक मुहम्मदी का घर उजड़वा न दिया। और हम ही पर क्या, बड़ी मुमानी जान से भी यही जलन है और चूँकि रजिया की मँगनी चचा के यहाँ हुई थी तो रोज- रोज की लड़ाई थी कि चाचा के यहाँ लड़की न दूँगी।

आफताब - *(हँस कर)* और बुआ, तुम्हारे मियाँ में ही क्या रखा था, बीवी वाला, बच्चों वाला, हाँ, रुपया है। तो तुम्हारे बड़े मामू भी गरीब न थे। कही शरीफों में भी ऐसी बातें हुई हैं। मूए पंजाबियों में दो बहनें अपनी बेटियाँ एक मर्द को ब्याह दीं, हमारे यहाँ तो ऐसा होता नहीं। अब नया जमाना है, जो कुछ न हो थोड़ा है। हाँ तो फिर हुआ?

मुहम्मदी - जब मैं बिगड़ी और बातें सुनाईं तो खुशामद करने लगे कि मैं उस पर आशिक हो गया हूँ। हाय, खुदा के लिए मेरी मदद करो। मेरी मदद करना तुम्हारा फर्ज है। अब इससे ज्यादा कौन-सी आग होती? यह हर समय का जलना, हर समय यही बातें कि मैं पागल हो जाऊँगा। कमरा बंद किये मुँह औंधाए पड़े हैं। रजिया, हाय रजिया हो रही है, मैं पड़ी सब सुन रही हूँ। खुदा की कसम आपा इस कदर कलेजा पक गया है कि यह रुपया-पैसा अब तो मुसीबत मालूम होता है। रूखी रोटी हो और सुख हो। आपा, जरा एक पान देना, बातें करते-करते होंठ सूख गये।(पास सुराही

रखी थी, उसमें से पानी निकाल कर पिया। और दोनों ने पान खाया) अत: यही हालत जारी रही और वह इश्किया शब्द उस मासूम कुवाँरी बच्ची के लिए इस्तेमाल करे और मैं सब सुनूँ और दिल में घुटूँ। मुमानी हैं कि वही सुलूक वही खातिर। रजिया, तुम्हारे दुल्हा भाई आये हैं। पान दो, इलायची लाओ।

आफताब - अच्छा तो यह सब किया-धरा तुम्हारी मुमानी का था।

मुहम्मदी - और क्या। वह लड़की घण्टों रोए। कहीं मैं मिल जाऊँ तो दिल का बुखार निकाल ले। एक महीना तो मैं चुप रही। फिर एक दिन दोनों मामू मुझसे मिलने आये। मैंने कहा, क्यूँ मामू जान, क्या रजिया की मँगनी टूट गयी? दोनों भाई चकरा गये, फिर मैं भरी बैठी थी - मैंने सब कच्चा चिट्ठा कह डाला। दोनों में कुछ राय हुई होगी। तीसरे दिन रजिया का ब्याह हो गया।

आफताब - अल्लाह - अल्लाह! खैर करे।

मुहम्मदी - लेकिन बुआ यह छै महीना घर में नहीं घुसे। हर समय चावड़ी में पड़े रहते थे! और मैं तो खुश थी। अल्लाह गवाह है जिस रोज यह इधर-उधर चले जाते हैं तो मैं चैन की नींद सोती हूँ। रोज यही है कि तुम रोज-रोज की बीमार हो, मैं कब तक सबर करूँ? मैं दूसरा ब्याह करता हूँ। और फिर यह जिद है कि तुम मेरा ब्याह कराओ। शरअ में चार बीवियाँ जायज हैं तो मैं क्यूँ न ब्याह करूँ। मैंने तो कहा, बिस्मिल्लाह करो। अब साल भर बाद साबरा की विदाई है। बाबा-बेटियों का साथ- साथ हो जाय। एक गोद में नवासा खिलाना, दूसरी में नई बीवी का बच्चा। बस लड़ने लगते हैं कि औरतें क्या जानें, खुदा ने उनको एहसास ही नहीं दिया। मैं तो कहती हूँ कि तुममें सारे मर्दों का एहसास भरा है। अब क्या...

आफताब - *(भड़क कर)* मुहम्मदी बेगम, जहाँ देखो यही आफत आई है। मर्दों में तो वह गुण है कि अट भी मारे पट भी। अब यह जुल्म कि ब्याह भी करूँगा और यह भी बीवी भी कमबख्त।

मुहम्मदी - इसी से तो जल-जल कर अपने मरने की दुआ माँगती हूँ। एक तो हर समय की अपनी बीमारी, रोज-रोज का बच्चों का दुख अलग, बड़े तो ठीक हैं पर छोटे बच्चे हर समय बीमार रहते हैं। इन सब बातों ने जीने का मजा छीन लिया है। और यह तो मैं जानती हूँ कि यह दूसरा ब्याह करेंगे ही, हर समय का यह धड़का अलग। खुदा इससे पहले मुझे उठा ले कि मैं सौतन का मुँह देखूँ। और सौतन के डर से बुआ मैंने क्या-क्या न किया। दो बार अपरेशन भी कराया।

आफताब - ऐ हाँ, हमने तो सुना था कि तुमने अब कुछ ऐसा करवा लिया है कि अब बच्चे न होंगे।

मुहम्मदी - यह तुमसे किसने कहा? अस्ल बात यह थी कि पेट और नीचे का सारा जिस्म झुक आया था, तो उसको ठीक करवा लिया था। कि फिर से मियाँ को नई बीवी का मजा आये। ऐ बुआ, जिस औरत के हर साल बच्चे हों उसका जिस्म कब तक ठीक रहेगा? फिर खिसक गया। और फिर मेरे पीछे पड़ कर डरा-धमका कर मुझे कटवाया। और फिर भी खुश नहीं हैं।

(अजान की आवाज पास की मस्जिद से आती है)

आफताब - ऐ है बुआ, जुहर का समय हो गया। बातों में ऐसी खोयी कि सब कुछ भूल गई। अब नमाज पढ़के ही जाऊँगी। तुम्हारे भाई बेचारे इंतेजार कर रहे होंगे।

मुहम्मदी - ऐ आपा, आज तुम आ गईं तो इतना दिल का बुखार निकल गया। जरा जल्दी-जल्दी आया करो। मैं तो बीमार हूँ, न कहीं आने की न कहीं जाने की। ऐ रहीमन - रहीमन - गुल शब्बो।

(रहीमन आती है)

मुहम्मदी - जा बड़ी बेगम साहब को वजू करवा। और... और दालान में चौकी पर जानमाज बिछवा दे!

(पर्दा)

❀

जवांमर्दी

- महमूदुज्ज़फ़र

वह मेरी बीवी जा रही है। मगर उसके होंठो पर उस मुस्कुराहट का नाम तक नहीं जैसा कि लोगों ने मेरे दिल की तस्कीन के लिए मुझसे कहा था। बस हड्डियों का एक ढाँचा है। उसकी भयानक सूरत से जाहिर होता है कि वह किसी जानलेवा बीमारी का शिकार है और मौत का डर उस पर हावी है। उसकी आँखों में मेरे लिए अब दिलचस्पी और प्यार की जगह, बेगानगी और नफरत है। मैं इसी लायक था। इस नफरत की वजह वह नवजात बच्चा है-जिसका सर उसके कूल्हे की हड्डियों में अब तक फँसा दिखाई देता है-जिसकी वजह से उसकी जान गयी, यह भला कौन सोच सकता था कि मेरी बीवी को मरते वक्त मुझसे नफरत होगी। मैंने उसको तकलीफ और मौत से बचाने के लिए कौन-सी बात उठा रखी थी। मगर नहीं। मैं ही, उसकी मौत का कारण हुआ, मैंने ही उसको दर्द और दुख पहुँचाया। मर्दों की जहालत और हिमाकत का शिकार था। यह सरासर गलत है। दरअसल, मुझे गुरूर के पंजे ने जकड़ लिया था। इसका मुझे एतराफ है।

हमारी शादी ऐसी उम्र में हुई थी, जब हममें एक दूसरे के जज्बात समझने की सलाहियत तक न थी। लेकिन बाद में जो हादसा पेश आया, उसका इल्जाम मैं किस्मत या ऐसे हालात पर जिन पर मुझे कोई काबू न था, नहीं रखना चाहता था।

मुझे अपनी बीवी से कभी मोहब्बत नहीं हुई और होती भी तो कैसे? हम जिंदगी के दो अलग दायरों में चक्कर लगा रहे थे, मेरी बीवी पुराने जमाने की तंग व अंधेरी गलियों में और मैं नये जमाने की साफ-चौड़ी और पक्की सड़कों पर। लेकिन जब मैं दूसरे मुल्कों में गया और उससे कई बरस तक जुदा रहा तो कभी-कभी मेरा दिल उसके लिए बेचैन होता था। वह अपने छोटे-से मजबूत पुराने किले में थी और मैं जिंदगी की गहमागहमी में फिजूल और बेफैज इश्कबाजी से तंग आ कर कभी-कभी उस पाक व बावफा औरत का ख्वाब देखा करता था जो बिला किसी मुआवजा के मुझ पर सब कुछ लुटाने को तैयार थी। जब मेरी यह कैफियत होती तो बेताबी के साथ मुझे उससे मिलने की ख्वाहिश होती। एक दफा मुझ पर ऐसी ही कैफियत हावी थी कि मुझे उसका एक खत मिला। मैं बेकरार हो गया और फौरन छह हजार मील के फासले से वतन की तरफ चल पड़ा। उसके खत में लिखा था -

"मैंने अभी तकिया के नीचे से फिर आपका खत निकाल कर पढ़ा। बहुत मुख्तसर है। शायद आप अपने काम में मशगूल होंगे। मगर खैर मुझे इसकी कोई शिकायत नहीं। बस मुझे आपकी खैरियत मालूम होती रहे और आप अच्छे रहें, खुश रहें, मेरे लिए यही काफी है। जब से मैं बीमार हूँ, सिवाय इसके कि आपको याद करूँ और उन अजीब-अजीब चीजों और नये-नये लोगों का ख्याल करूँ जिनसे आप वहाँ मिलते होंगे, मुझे और काम नहीं। मुझसे चला नहीं जाता, इस वजह से पलंग पर पड़ी-पड़ी तरह-तरह के ख्याल किया करती हूँ। कभी तो इसमें लुत्फ आता है और कभी इससे सख्त तकलीफ होती है। जब लोग मेरी सेहत के बारे में गुफ्तगू करते हैं और मुझसे हमदर्दी जाहिर करते हैं और नसीहत करते हैं तो मुझे बड़ी कोफ्त होती है। यह लोग यह तक नहीं समझते कि मुझे क्या रोग है। उन्हें सिर्फ अपने दिल की तसकीन के लिए मेरे ऊपर रहम आता है। अपने माँ-बाप पर भी मैं भार हूँ। वे अपने दिल में ख्याल करते होंगे कि बावजूद मेरी शादी हो जाने के बाद मैं ऐसी बदनसीब हूँ कि उनके गले पड़ी हूँ। इसका नतीजा यह है

कि मैं हर वक्त इस कोशिश में रहती हूँ कि बहुत ज्यादा मायूसी और रंज जाहिर न करूँ और मेरे माँ-बाप ऐसी कोशिशें करते हैं जिससे यह जाहिर होता है कि उन्हें मेरी बीमारी की वजह से बड़ी ऊहापोह और चिंता है। गरज दोनों तरफ बनावट है। मैं आपसे किसी बात की शिकायत नहीं करना चाहती और न आपके काम में रुकावट डालना चाहती हूँ। आप मुझे भूल न जाएँ और कभी-कभी खत लिख दिया करें। मेरे लिए यही बहुत है। बल्कि कभी-कभी तो मुझे यह ख्याल होता है कि आपका मुझसे दूर ही रहना बेहतर है। मुझे डर इस बात का है कि जैसे बीमारी के बाद से मैं यहाँ करीब-करीब सबके लिए बेगानी-सी हो गई हूँ, वैसे ही कहीं मैं आपको न खो बैठूँ। दिन-रात मेरी बुरी हालत देख कर कहीं आपका दिल भी मेरी तरफ से न हट जाये। वहाँ से तो आप महज इसकी कल्पना कर सकते हैं और मैं आपकी अपनी जिन्दगी के मुकम्मल महाफिज के तौर पर कल्पना करती हूँ, जिसकी मेरे दिल को तमन्ना है। "

जब मुझे यह खत मिला तो मुझ पर इश्क व मोहब्बत की एक लहर-सी दौड़ गयी। गो कि वह बीमार थी और उसे रोग लग गया था मगर उसको सीने से लगाना मेरा फर्ज था। मैं यह साबित कर देना चाहता था कि मेरी मोहब्बत में कोई बात हायल नहीं हो सकती है। मैं चाहता था कि उसे मालूम हो जाये कि मैं ही वह सच्चा साथी हूँ, जिसकी उसे तलाश थी। मैंने अपने को कुसूरवार और बुरा करार दिया और उसको मासूम व निर्मल। जैसी उसने मेरे साथ खाकसारी बरती और मेरी खिदमत की, मेरा भी फर्ज था कि मैं भी उसके साथ वैसा ही सलूक करूँ। यह फैसला करके मैं अपना काम छोड़कर घर की तरफ चल खड़ा हुआ।

मैं अभी रास्ते में ही था कि मेरे जज्बात में तब्दीलियाँ होने लगीं। वह शुरू का-सा पाक जज्बा बिल्कुल गायब हो गया और रोजमर्रा की छोटी-छोटी बातों की तरफ मेरे ख्यालात दौड़ने लगे। मसलन, रोजी कमाने का मैं कौन-सा रास्ता निकालूंगा, अपने दोस्तों में किन-किन से मुलाकात जारी रखूंगा, अपने ससुर और सास से किस तरह मिलूंगा, उनसे साफ-साफ बातें करूँ या उनकी तरफ से बेरुखी बरतूँ वगैरा-वगैरा। सिर्फ अपनी बीवी से मिलने की तमन्ना बाकी है। यही नहीं, बल्कि जरा-जरा-सी रोजाना जिंदगी की समस्याओं ने मेरी तमन्नाओं और जोश का खात्मा कर दिया। घर पहुँचने पर ये समस्याएँ विकृत सच्चाइयों में बदल गयीं जिनसे बच पाना मुमकिन नहीं था। पुराने जमाने की जिन-जिन दिलफरेबियों की मैंने अपने जहन में तस्वीर खींची थी, उनका कहीं पता नहीं था। बजाए इसके खुद को मैंने तंग व तारीक, गंदी, जुल्म व जाहिलियत से लबरेज एक दुनिया में बन्द पाया। स्टेशन पर जो लोग मुझसे मिलने आये, उनमें ज्यादातर बेहूदा, बदमाश, तंग नजर, संकरी सोच वाले नाकारा किस्म के आदमी थे। उन सबने बहुत खुशी के साथ मेरा स्वागत किया, मुझे हार पहनाया, मुझ पर फिकरे कसे गये, वही पुराने गैर शालीन, भोंडे मजाक हुए और दूसरों की बुराइयाँ की गयीं। कई दिनों तक जलसों, बैठकों और दावतों का सिलसिला रहा। इसके बाद कहीं उन लोगों से निजात मिली। इस दरम्यान मैं अपनी बीवी से सिर्फ थोड़ी-थोड़ी देर के लिए मिल सका। लेकिन उसके तेल से चिपके हुए बाल, उसका लागर जिस्म और जर्द चेहरा, दावतों, संगीत व नाच की महफिलों और इधर-उधर बातचीत के वक्त भी बारहा मेरी नजर में सामने आ जाता था।

जब सब मेहमान रुख्सत हो गये तो मैं अपनी बीवी के पास गया और उसके करीब पलंग पर जा कर बैठा। वह खामोश लेटी रही और मेरी तरफ उसने नजर उठा कर नहीं देखा। मैं थोड़ी देर तक तो उसकी साँस के साथ उसके सीने का चढ़ाव उतार देखता रहा, फिर मैंने उसका कमजोर-लागर हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ देर तक हम यों ही खामोश बैठे रहे। फिर मैं बोला, "लीजिये अब तो मैं आपके पास आ गया, कुछ बातें कीजिये, आप इतनी चुप

क्यों हैं?" उसने जवाब दिया, "मैं क्या बातें करूँ, खैर आप आ गये।" मैंने सहसा महसूस किया कि इस तरह काम नहीं चलने का। मैंने जल्दी से कहा, "वाह, आपको तो मुझसे बहुत कुछ कहना है। इतने दिन जो मैं यहाँ नहीं रहा तो आप क्या करती रहीं और कैसी रहीं। सब मुझे बताइये। आखिर इतने दिन आपने मुझसे बातचीत नहीं की थी, अब उसकी कसर निकालिये। याद है आपको, आपने मुझको एक दफा खत में लिखा था कि आपको एक हमदम व दमसाज की जुस्तूजू है। मैं ही वह शख्स हूँ और अब आपके पास इसलिए हूँ कि हर वक्त आपके पास रहूँ और कभी आपसे जुदा न होऊँ।"

मगर मेरी तमाम कोशिशें बेकार साबित हुईं। मेरी बातों से जाहिर था कि रहे हुए पाठ की तरह ऊपरी हैं और उनसे मेरी बीवी को कोई तसल्ली नहीं हुई। कुछ देर तक मुझे यह उम्मीद रही कि उसको शायद इसका एहसास नहीं हुआ। मगर वह घबड़ाहट और बेचैनी से मेरी टोपी उठा कर हाथों से मलने-दलने लगी और फिर ऐसी गुफ्तगू हुई कि मुझे आपनी नाकामयाबी का यकीन हो गया। उसने कहा, "भला मैं क्या कहूँ? यहाँ तो जैसे दिन वैसी रात। लेकिन आप क्यों चुप हैं। आपको नये-नये तजूर्बे हुए होंगे। नये मामलों से सबका पड़ा होगा। आप मुझसे उन सब बातों का तजकिरा कीजिए। वहाँ की अजीब-अजीब चीजें, तरह-तरह की मशीनें, किस्म-किस्म के लोग, नई जिंदगी। आप लिखा करते थे कि आपको इन सबके बारे में मुझे लिखने का वक्त नहीं। लेकिन अब तो आप मेरे पास हैं। अब तो आपको वक्त है।"

यह उसने जानबूझ कर मेरी खुद्दारी पर हमला किया। अब मुझे मालूम हो गया कि सालों की जुदाई ने हमारे ताल्लुकात में कोई फर्क पैदा नहीं किया है। हम पहले की तरह अब भी एक दूसरे से बेगाने थे और एक दरिया के दो अलग किनारों पर अजनबी की तरह खड़े हुए थे। हमने फिर एक-दूसरे के साथ धोखा-धड़ी शुरू कर दी।

मैंने कहा, "हाँ-हाँ, मुझे तो आपसे बहुत-सी बातें करनी हैं। हम दोनों मिल कर क्या-क्या करेंगे, यह तय करना है। लेकिन पहले आप जल्दी से अच्छी तो हो जायेंगी तब हम इसके बारे में बातें करेंगे। अभी तो आपको खमोशी से आराम करना चाहिए। आप अपने दिल-ओ दिमाग पर जोर न डालिए। मेरे आने की वजह से शायद आपको तकलीफ हो गयी। आप आराम कीजिये और ज्यादा सोचिये मत। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। आप सो जाइये।"

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और वहाँ से उठ कर चला आया। इसके बाद न तो मैंने उससे ज्यादा राब्ता बढ़ाने की कोशिश की और न किसी खास बात पर ज्यादा देर तक गुफ्तगू ही की। दिन में एक-दो-दफा उसे देखने जाया करता, दरयाफ्त करता कि उसकी सेहत कैसी है और ऐसी ही दो-एक बातें करके चला आता और अपने काम में मसरूफ हो जाता। इत्तफाक से मेरा काम भी इन दिनों अच्छा नहीं चल रहा था और मुझे फुर्सत काफी थी। रफ्ता-रफ्ता मैं फिर अपने पुराने दोस्तों की सोहबत में रहने लगा और उनकी गंदी तथा बेकार आदतें मुझमें भी आ गयीं। ताश, शराब और बेसिर-पैर की बातों का सिलसिला जारी रहने लगा। हम अपने को संगीत का भी माहिर समझते थे। चुनांचे शहर की नामवर गाने वालियों के सर परस्त बन बैठे। ऐसे हालत में जाहिर है कि मैंने एक औरत भी रख ली थी। हमने बेमानी और बेमकसद जिंदगी बसर करने की यही तरकीबें निकाली थीं। हममें से जो लोग दूसरे मुल्कों का सफर कर आये थे वो अपनी जवांमर्दी और आशिकी की दास्तानें दूसरों को सुना-सुना कर उन पर रौब जमाते थे। लेकिन मेरे लिए अपनी बीवी से छुटकारा पाना नामुमकिन था। उसकी बीमारी की वजह से मेरे पास मिजाजपुर्सी के लिए खत और दोस्तों व रिश्तेदारों का सिलसिला कायम रहता। कोई मुझे नसीहत देता तो कोई उलाहना, कोई

दिलासा देता तो कोई हमदर्दी जाहिर करता। इन सब बातों से मेरी जिंदगी अजाब (नारकीय) हो गयी। मेरे सास और ससुर को मेरी आजादी और तौर-तरीके बहुत खलते थे। वो डरते थे कि मैं उनकी लड़की को कहीं एकदम न छोड़ दूँ। इधर मेरी माँ का लगातार इसरार था कि मैं दूसरी शादी कर लूँ। खानदान में दो ऐसे गिरोह बन गये जिन्हें एक-दूसरे से सख्त अदावत थी। दोनों मुझे अपनी तरफ खींचने की हर वक्त कोशिश करते रहते थे। लेकिन बावजूद माँ के इसरार के मैं दूसरी शादी करने पर राजी नहीं हुआ। आखिरकार, लोगों ने मेरी मर्दानगी पर शक शुरू कर दिया और तरह-तरह की कानाफूसी करने लगे। मैं अजब पशोपेश में फँस गया और मैंने यह तय कर लिया कि कुछ-न-कुछ जरूर करना चाहिए।

मैं अपनी ससुराल गया और वहाँ जा कर कहा कि आपकी लड़की बीमार-वीमार कुछ भी नहीं। ये सब बेकार के अपने यहाँ रोकने के बहाने हैं। मैं उसे अपने साथ लिए जाता हूँ। मैंने अपनी बीवी से भी कहा कि आप बिल्कुल बीमार नहीं, कम से कम ऐसी बीमारी नहीं जैसा यहाँ लोग आपको बनाना चाहते हैं। ये सब आपके अम्मी-अब्बू की चाल है। यह बात कोई आपसे छिपी हुई नहीं है। आप मेरे साथ चल कर रहिये तब पता चलेगा कि आपको क्या बीमारी है। पहले तो मेरी साफगोई कुछ उसकी समझ में नहीं आयी। मगर थोड़ी न-नकार के बाद वह मेरे साथ चलने पर राजी हो गयी।

हम दोनों ने एक लम्बा सफर किया और दूर पहाड़ों पर जा कर रहने लगे। बर्फ से ढकी जगह की खुश्क और ताजा हवा में दूर-दूर टहलने के लिए निकल जाते। जब थोड़े दिनों बाद मेरी बीवी की सेहत ठीक हो गयी तो उसे घर ले आया। मेरे दोस्तों और रिश्तेदारों ने जब हमें साथ देखा तो मुझे फख्र महसूस हुआ। मगर उनके दिलों में शक बाकी था। वे पूरे सुबूत के लिए किसी और चीज के इन्तजार में थे। लेकिन मुझे अपनी फतहयाबी का पूरा यकीन था। एक महीने के बाद दूसरा महीना आहिस्ता-आहिस्ता गुजरता जाता था और मेरी बीवी का पेट बढ़ता जाता था।

मेरी हालत उस माली की थी जो अपने लगाये दरख्तों पर कलियों को खिलते हुए देख कर खुशी से फूला नहीं समाता है। हर-हर दिन, हर-हर क्षण मेरी कामयाबी ज्यादा नुमाया होती जाती। लेकिन मेरी बीवी खामोश रही। मैं समझता कि इसका सबब शायद प्रसव की परेशानी और घबड़ाहट है। आखिरकार उसको प्रसव का दर्द शुरू हुआ। घंटो बेचैनी और तकलीफ का आलम रहा। दर्द की शिद्दत से जिस्म तड़प रहा था और उसे किसी पहलू चैन न था। लगता था उसकी आत्मा तक आह व फरयाद कर रही है। लेकिन उसकी छटपटाहट और तड़प, उसका दर्द से चीखना-चिल्लाना, उन सबसे मेरी जवान मर्दानगी का सुबूत मिल रहा था। और उसके बाद चारों तरफ खामोशी छा गयी जिसने मेरी अकड़ और शान को खाक में मिला दिया। अल्लाह माफ करे, मेरे कानों में अभी तक उसका दर्दनाक कराहना गूँज रहा है। वह समां अभी तक मेरी आँखों के सामने है। लेकिन उसके मरने के बाद जब लोग मुझसे यह कहने आये कि मरते वक्त उसके लबों पर मुस्कुराहट थी तो मेरे दिल को कुछ सुकून हो गया।

❀